प्रस्तावना

महाराष्ट्र के राज्यपाल के पद से अप्रैल सन् १९६२ मे मुक्त होने पर मैने विचार किया कि ७२ वर्ष की वृद्धावस्था मे अब आवश्यक है कि किसी उपयुक्त स्थान मे विश्राम करूँ और ४५ वर्ष के व्यस्त सार्वजनिक जीवन के बाद कुछ शान्ति पाने का प्रयत्न करूँ। इस उद्देश्य से मैने देहरादून आना निश्चय किया। अपने उत्तर प्रदेश मे सम्भवत यह जिला इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए सर्वोत्तम है। इस कारण अपने पद का भार अपने उत्तराधिकारी को सुपुर्द कर मैने अपने घर काशी न जाकर सीधे देहरादून आने के लिए ही प्रबन्ध किया। चलने की तैयारी मै कर रहा था और अपना असबाब बाँध रहा था कि भूतपूर्व राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का प्रेमपूर्ण पत्र मुझे मिला जिसमे उन्होने लिखा कि 'मुझसे मिल कर और मेरे पास दो-चार दिन रह कर आगे जाने का विचार करना'। उनकी उदारतापूर्ण इच्छाओ की पूर्ति करते हुए मै रास्ते मे दिल्ली मे उतर पडा। राष्ट्रपति के प्रति तो अपना सम्मान प्रकट किया ही, साथ ही अन्य मित्रो और पुराने सहयोगियो से भी मिलने गया।

श्री घनश्यामदास बिडला से भी मै मिला। उन्होने स्वाभाविक मैत्रीभाव से पूछा कि 'तुम्हारा आगे का क्या कार्यक्रम है?' जब मैने कहा कि इस अवस्था मे मै शान्ति के साथ कुछ अध्ययन और लेखन करना चाहता हूँ, और पत्रकारिता से अपने छूटे हुए सम्पर्को को फिर स्थापित करना चाहता हूँ, तब उन्होने यह इच्छा प्रकट की कि मै दिल्ली के उनके प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे लेख लिखूं। अवश्य ही मेरी भी यह प्रबल इच्छा थी कि यदि अवसर मिले तो उन समस्याओ पर अपने भावो को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करूँ जो देश के सम्मुख उपस्थित है। श्री बिडला जी के इच्छानुसार 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रधान

व्यवस्थापक श्री जी० एन० साही मुझसे राष्ट्रपति भवन मे मिलने आये। उन्होने चाहा कि अपने सरकारी और गैर-सरकारी जीवन के अनुभवो को मैं पाठको के सामने प्रस्तुत करूँ। मुझे यह सुझाव अच्छा लगा और वह मेरे विचार के अनुकूल भी था।

नवनिर्मित स्वतन्त्र पाकिस्तान राज्य मे भारत के उच्चायुक्त का मेरा प्रथम सरकारी पद था। मैंने विचार किया कि अच्छा हो यदि मैं उसी से लेखन का अपना काम आरम्भ करूँ। 'देश का दुखद विभाजन', 'राजनयिक (डिप्लोमेटिक) जगत से मेरा सम्पर्क', 'प्रारम्भिक दिनो का पाकिस्तान'—ऐसे विषय थे जिसमे मैंने सोचा कि पाठको को भी रुचि होगी। इस पर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे मैंने लम्बी लेख-माला लिखना आरम्भ किया। साथ ही उसी से सम्बन्धित हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' मे भी लिखने का मुझे निमन्त्रण मिला। दोनो ही पत्रो मे मेरे लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे। जैसी सुविधा होती थी और जैसा मुझे आशु-लिपिक मिल जाते थे, मैं कभी हिन्दी मे और कभी अग्रेजी मे मूल लेख लिखता था, और पीछे हिन्दी का अग्रेजी मे और अग्रेजी का हिन्दी मे अनुवाद कर लेता था। मुझे इस समय यह स्मरण नही है कि कौन अध्याय मैंने पहले अग्रेजी मे और कौन मैंने पहले हिन्दी मे लिखा। ऐसी अवस्था मे दोनो ही सस्करणो को मौलिक समझना चाहिए।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दुस्तान' दोनो ही अपने देश के बडे सम्मानित और लोकप्रिय समाचार-पत्रो मे हैं। बडे कठिन समय मे इनके द्वारा स्वतन्त्रता सग्राम मे बराबर प्रशसनीय सहायता मिलती रही। मैं दोनो के सम्पादको के प्रति अनुगृहीत हूँ कि उन्होने मेरे लेखो को प्रकाशित किया और मेरे साथ इतनी शिष्टता का व्यवहार किया। मै डेढ वर्ष पाकिस्तान मे रहा और उसकी कहानी मैंने अग्रेजी मे २६ और हिन्दी मे २७ लेखो मे लिखी है। इन पत्रो के सम्पादको, व्यवस्थापको और अन्य अधिकारियो को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि उन्होने फौरन ही मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मुझे अनुमति दे दी कि इन लेखो का जिस प्रकार चाहूँ मै प्रयोग कर सकता हूँ।

जसा कि समाचार-पत्रो मे लेख भेजने वालो को विदित है, यह सम्भव नही होता कि जितना और जो कुछ लेखक लिखे सब प्रकाशित हो जाय। स्थानाभाव के कारण सम्पादकगण लेखो को काट-छाँट देते है, और यह तो सम्पादक का अधिकार माना ही जाता है कि वह स्वय निश्चय करे कि क्या मुद्रित करे और क्या न करे। इस कारण मै इन लेखो को पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए जहाँ तक हो सका अपने मूल लेखो की प्रतिलिपियो पर ही आश्रित रहा। खेद है कि न मैने लेखो की कतरने और न ही अपनी पाण्डुलिपियो को ही सुव्यवस्थित रूप से एकत्र करके रखा। परिणाम यह हुआ कि उनका फिर से सग्रह करने मे मुझे बडी कठिनाई हुई। मुझे यह भी शका है कि एक-दो लेख कही रह गये क्योकि एक-दो स्थानो पर मैने शृङ्खला टूटती हुई पायी और उसे पूरी करने के लिए मैने लेखो की आवृत्ति करते समय कुछ नये वाक्यो को जोड दिया।

यह कहानी छोटे-छोटे, पृथक्-पृथक् लेखो मे लिखी गयी जो कि समय का अन्तर दे दे कर प्रकाशित किये गये। इस कारण अनिवार्य रूप से कुछ घटनाओ का बार-बार उल्लेख हो गया है जिससे कि प्रत्येक लेख यथासम्भव पूर्ण रहे। इन लेखो की पुनरावृत्ति करते हुए और उन्हे पुस्तकाकार प्रकाशित करने के हेतु मैने यह प्रयत्न किया है कि जहाँ तक हो सके किन्ही घटनाओ का बार-बार उल्लेख न किया जाय, पर इस कार्य मे मुझे अधिक सफलता नही मिली। कई स्थानो पर त्रुटियाँ रह ही गयी। इसके लिए मै पाठको से क्षमा-प्रार्थी हूँ। जिस समय का मैने वर्णन किया है वह हमारे देश के इतिहास मे बडा ही कठिन समय था। यद्यपि तब से १९ वर्ष ही बीते है पर अभी से लोग उसे भूले जा रहे है। वास्तव मे जैसी उस समय की स्थिति थी उसकी तुलना हम अपने अनन्तकाल के इतिहास के किसी भी युग से नही कर सकते। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी देश को किसी भी काल मे ठीक इस प्रकार की स्थिति का सामना नही करना पडा है।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति मै सदा हृदय से अनुगृहीत रहूँगा कि उन्होने मुझ पर इतना विश्वास किया और

भारत का प्रथम उच्चायुक्त बना कर मुझे पाकिस्तान भेजा। इसे मैं सदा भारत भूमि का ही अग मानूंगा और इसे पृथक् स्वतन्त्र राज्य के रूप मे जानूंगा। यद्यपि इसे लोग पृथक् देश कहने लगे हैं, पर मैं इसे यह पद देने को तैयार नही हूँ। मैं यही समझता हूँ कि भारत एक देश है और किन्ही विशेष कारण से वह दो पृथक् सर्व-सत्ताप्राप्त स्वतन्त्र राज्यो मे विभक्त कर दिया गया है।

मैं यही आशा करता हूं कि जो कुछ मैने लिखा है वह केवल इतिहास और राजनीति के अध्येताओ के लिए ही नही, पर मनो-वैज्ञानिक अनुसधानकर्त्ताओ के लिए भी कुछ लाभदायक होगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं समझूंगा कि मेरा श्रम निरर्थक नही रहा। विविध विशिष्ट व्यक्तियो की विवेचना मैंने स्पष्ट रूप से की है और मैं यही आशा करता हूँ कि मैंने किसी के साथ अन्याय और अनाचार न किया होगा।

जहाँ तक मुझे मालूम हुआ 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दुस्तान' के मेरे लेख बहुत लोगो ने पढे। इनके सम्बन्ध मे मेरे पास बहुत से पत्र भी आये और ऐसे लोगो ने इन्हे भेजा जिनके सम्बन्ध मे मैं विचार भी नही कर सकता था कि वे इन्हे भी पढेंगे। इस सब से मैं पर्याप्त रूप से उत्साहित हुआ और जब मित्रो ने कहा कि इन लेखो का सग्रह कर इन्हे पुस्तक रूप मे प्रकाशित करना चाहिए तो इसमे मैंने कोई आपत्ति नही देखी। मैं यही आशा कर सकता हूँ कि जिस उद्देश्य से यह कार्य किया जा रहा है उसकी सिद्धि होगी और पाठकगण उन स्थितियो पर मनन करेंगे जिनके कारण देश का विभाजन हुआ। उचित है कि हम उससे अच्छी शिक्षा ले और आगे चल कर फिर ऐसी गलतियाँ न करें जिनके कारण देश को फिर सकट मे पडना पडे और इसका अधिक खण्डो मे विभाजन हो, क्योंकि वास्तव मे हमारा प्रिय देश एक है और केवल सास्कृतिक दृष्टि से ही नही राजनीतिक रूप से भी हमे उसे सदा एक ही बनाये रखना चाहिए।

सेवाश्रम,
वाराणसी।

विषय-सूची

पाकिस्तान की भावना का उद्गम—
जिन्ना साहब से वार्तालाप

नवम्बर-दिसम्बर १६३४ के साधारण निर्वाचन के बाद मै जनवरी १६३५ मे प्रथम बार दिल्ली की केन्द्रीय विधान सभा मे पहुँचा। उस समय उसके करीब १५० सदस्य थे। काग्रेस दल के निर्वाचित और शासन की तरफ से नियोजित सदस्यो की सख्या प्राय बराबर ही थी। दोनो ही तरफ से करीब ५० सदस्य रहे। जनाब मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व मे निर्वाचित मुसलिम सदस्यो मे अधिकतर ने मिलकर स्वतन्त्र दल का निर्माण किया। यह मुसलिम लीग के नाम से उस समय नही जाना जाता था। उसमे दो पारसी सदस्य सर कावसजी जहाँगीर और सर होमी मोदी भी थे जो जिन्ना साहब से व्यक्तिगत मैत्री के कारण उनके साथ हो लिए थे। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है दल के सदस्यो की सख्या ३५ के करीब थी। अन्य सदस्यगण पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। जिस पक्ष मे चाहते थे बोलते थे, और मत देते थे। प्रतिदिन ही किसी न किसी विषय पर मत लिया जाता था। यदि तथाकथित मुसलिम हितो की कोई बात उसमे न हो तो साधारण प्रकार से जिन्ना साहब का स्वतन्त्र दल मतगणना के समय काग्रेस के साथ ही रहता था। एक अवसर पर जब कोई बहस हो रही थी मौलाना शौकत अली और सर होमी मोदी मे कुछ कहा-सुनी हो गई। मौलाना ने अपनी मुट्ठी बाँध कर सर होमी मोदी को धमकाया। उन्होने इतना विचार अवश्य रखा कि अध्यक्ष सर अब्दुर् रहीम इस तनातनी को देख न ले। उनकी बँधी मुट्ठी बेंचो से छिपी थी। दूसरे दिन हम सबने देखा कि सर होमी मोदी गवर्नमेट के बेंचो पर चले गए।

उस समय विधान-सभा मे यूरोपीयो का भी एक १२ सदस्यो का दल था। अन्य विधायको की अपेक्षा विभिन्न विषयो की जानकारी इन लोगो मे सबसे अधिक थी। देश मे व्यापार करने वाले यूरोपीय लोगो के हितो के ये रक्षक थे। उन लोगो ने अपने मे सर हेनरी गिडनी नाम के अधगोरे (एग्लो-इडियन) सदस्य को भी सम्मिलित कर लिया था जिससे उनकी सख्या १२ हो जाय। बारह से कम सदस्यो का कोई दल मान्यता प्राप्त नही कर सकता था। ये लोग प्राय गवर्नमेट के पक्ष मे ही अपना मत देते थे। कभी कोई विशेष बात हो जाय जिसमे यह समझें कि यूरोपीयो के हितो की हानि हो रही है तब तो यह विपक्ष मे भी राय दे देते थे। जिन्ना साहब का स्वतन्त्र दल शीघ्र ही मुसलिम लीग दल मे परिवर्तित हो गया। सर कावसजी जहाँगीर ने भी उसे छोड दिया और बीच के बेंचो पर उन्हे बैठने के लिए आगे का स्थान दिया गया।

मुझे स्मरण है कि 'पाकिस्तान' नाम की एक पुस्तिका विधान-सभा की पहली बैठक मे सदस्यो मे बाँटी गई। जहाँ तक याद पडता है इस पर जनाब रहमत अली के हस्ताक्षर थे। यह केम्ब्रिज से भेजी गई थी और उसमे पाकिस्तान के पृथक् राज्य की स्थापना का सुझाव दिया गया था। इसमे इस नाम मे 'प' पजाब के लिए था, 'अ' अफगानिस्तान के लिए, 'क' कश्मीर के लिए, और 'स' सिंध के लिए समझा जाता है। 'पाक' का अर्थ 'पवित्र' होता है। 'पाकिस्तान' का अर्थ हुआ 'पवित्र लोगो का स्थान'। इस प्रकार के प्रस्तावित पाकिस्तान मे कश्मीर नाम का भारतीय राज्य, अफगानिस्तान का स्वतन्त्र राज्य और पजाब और सिंध नाम के दो अग्रेज शासित भारतीय प्रान्त थे। उस समय भारत शासन के गृह सदस्य सर हेनरी क्रेक थे। ये बडे जबर्दस्त शासक समझे जाते थे। इस प्रस्ताव पर वे खूब हँसे और जहाँ तक मुझे स्मरण आता है जिन्ना साहब और भी जोर से हँसे। दुख की बात है कि समय की गति के साथ-साथ स्थिति भी ऐसी परिवर्तित होती गयी कि अग्रेज और मुसलमान दोनो ही पाकिस्तान की भावना के समर्थक

हो गये। इसका कारण मैं आगे बतलाने का प्रयत्न करूँगा। देश की साम्प्रदायिक स्थिति बिगडती ही गयी। विधान-सभा का जीवन-काल १९३७ तक का था, पर वह बढा दिया गया। द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया और १९४५ तक यही विधान सभा बनी रही।

सन् १९३९ की शीत ऋतु का सत्र समाप्त ही होने वाला था कि मेरी नगरी काशी मे साम्प्रदायिक दगा हुआ। मै भागा हुआ घर आया और इस प्रयत्न मे लगा कि जहाँ तक मेरी छोटी सी शक्ति है उसके अनुसार यह साम्प्रदायिक वैमनस्य हटाया जाय और शान्ति की स्थापना हो। जहाँ तक कि काग्रेस का सम्बन्ध है, सन् १९३४ की निर्वाचित सभा का यह अन्तिम सत्र ही था क्योकि द्वितीय महायुद्ध मे महात्मा गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस ने महायुद्ध की क्रियाओ से पूर्ण रूप से असहयोग किया, और चारो तरफ यह नारा उठाया गया कि 'न हम एक पाई देगे न एक भाई'। सभा के काग्रेसी सदस्यो से यह कहा गया कि आप लोग सभा मे न जाएँ। विशेष अवसरो पर जब हमारे नेता श्री भूलाभाई देसाई आदेश करते थे तब हम विशेष प्रयोजनो के लिए सभा मे जाते थे पर साधारण प्रकार से काग्रेस की बेचे बराबर खाली ही रही। इस बीच मे बहुत से सदस्यगण जेल मे भी अपना समय काटते रहे।

इसी बीच सन् १९४०–४१ का व्यक्तिगत सत्याग्रह और सन् १९४२–४५ का 'भारत छोडो' आन्दोलन सम्बन्धी विद्रोह हुआ। अप्रैल सन् १९३९ मे जब अनिश्चित समय के लिए विधान-सभा स्थगित होने वाली थी तब मैने एक दिन जिन्ना साहब से मुलाकात करने के लिए समय माँगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे लिए यह कहना उचित होगा कि उन्होने मेरे साथ बराबर शिष्टाचार का ही व्यवहार रखा और विधान सभा की 'लाबियो' (बगल की वीथियो) मे मुझे अक्सर उनसे बाते करने का मौका मिला। जब मैने उनसे कहा कि मै आपसे मिलने आपके घर आना चाहता हूँ तो उन्होने फौरन ही समय निश्चित किया। मै उनके यहाँ गया। करीब एक घटे मै उनसे बाते करता रहा। इस बीच कई मुसलिम

लीग के सदस्य उनसे मुलाकात करने आये पर उन्हे बाहर प्रतीक्षा करनी पडी। जिन्ना साहब की और मेरी बाते बहुत स्पष्ट रूप से हुई। यद्यपि मैं पुराने आचार-विचार का हिन्दू समझा जाता था तथापि विधान सभा के सदस्यो की यह धारणा थी कि मैं मुसलमानो का मित्र हूँ। कम से कम मुझे उनके विरुद्ध कोई विकार नही है। जिन्ना साहब से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने मे मुझे कोई कठिनाई नही हुई।

मैंने प्रथम बार उन्हे सन् १९१६ की लखनऊ की काग्रेस में देखा था। पर मैंने उनसे प्रथम बार बातचीत जनवरी सन् १९२२ मे की जब पण्डित मदन मोहन मालवीय और अन्य मित्रो से मिलकर उन्होंने सम्मेलन आमन्त्रित किया था और प्रयत्न किया था कि काग्रेस और सरकार मे कुछ समझौता हो जाय। अग्रेज राजकुमार का बहिष्कार हो रहा था और हमारे कितने ही उच्च कोटि के नेतागण जेल भेज दिये गये थे। बीच-बीच मे जिन्ना साहब से मेरी मुलाकात होती रही पर मेरा उनसे निकट सम्पर्क विधान-सभा मे हुआ जब हम दोनो उसके सदस्य रहे (१९३५–१९४५)। मैंने उनमे परिवर्तन होते हुए भी अनुभव किया। अब राष्ट्रवादी से वे कट्टर साम्प्रदायिक नेता हो गये।

वार्तालाप आरम्भ करते हुए मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि मुझे उनके प्रति व्यक्तिगत रूप से बहुत आदर है। मैंने उन्हे यह भी बतलाया कि मेरे जन्म की नगरी काशी और उसके बाहर के कितने ही मुसलमान सज्जन मेरे कुटुम्ब के अच्छे मित्र रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि मेरी बाल्यावस्था की स्मृति यही है कि मेरे दादा के मुसलमान मित्र मेरे घर आया करते थे और उनके पुत्रगण उन्हे बडे प्रेम से 'चाचा' कह कर पुकारते थे। मैंने उनसे यह भी कहा कि अलीगढ विश्वविद्यालय के सस्थापक सर सैयद अहमद मेरे दादा जी के मित्रो मे थे। इस पर जिन्ना साहब ने कहा कि वे बराबर काग्रेस मे थे। उसके वे साधारण सदस्य ही नही थे, उसमे पर्याप्त उच्च पद रखते थे। यदि उनके भावो मे परिवर्तन हुआ तो अवश्य ही उसके कुछ कारण होने चाहिएं।

वडे प्रेम से मुझसे वे बोले कि जिस प्रकार तुम्हारे दादा के इतने मुसलमान मित्र थे उसी प्रकार मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि मेरे तो सब मित्र हिन्दू ही हैं। तब आवेश मे आकर उन्होने 'पीरपुर रिपोर्ट' नाम की पोथी उपस्थित की। इसमे किसी मुसलमान ताल्लुकेदार ने सयुक्त प्रान्त अर्थात् उत्तर प्रदेश की काग्रेस सरकार की खराबियाँ दर्शायी थी और यह बतलाना चाहा था कि मुसलमानो के साथ हर प्रकार का अन्याय और अत्याचार हो रहा है। स्मरण रहे कि १६३५ के भारत शासन अधिनियम (गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट) के अनुसार सन् १६३७ मे भारत के कई प्रदेशो मे प्रान्तीय स्वायत्त शासन (प्राविंशियल आटोनमी) के आधार पर काग्रेस और मुसलिम लीग के शासन का निर्माण हुआ। मेरे जन्म के प्रान्त उत्तर प्रदेश का पद सदा से ही विशेष प्रकार का रहा है। जनसख्या के अनुसार तो वहाँ केवल १४ फी सदी मुसलिम रहे है। पर वह पूर्णत अथवा अशत शताब्दियो से मुसलिम शासन का केन्द्र रहा है। जिसे 'मुसलिम सस्कृति' कह सकते है उसका भी यहाँ प्राधान्य रहा। उन दिनो सभी पढे-लिखे लोग फारसी-अरबी से सम्बन्ध रखते थे। उनका परस्पर का सामाजिक व्यवहार मुसलिम प्रथा के अनुसार था।

न्यायालयो की भाषा उर्दू थी। यह फारसी लिपि मे लिखी जाती रही है। उन दिनो देवनागरी लिपि मे लिखकर कोई दस्तावेज न्यायालयो मे नही दाखिल किया जा सकता था चाहे उसकी भाषा फारसी के कठिन शब्दो से भरी हुई ही क्यो न हो। प्रभावशाली कश्मीरी और कायस्थ जातियो के सुशिक्षित हिन्दू हिन्दी भाषा का 'भाखा' कह कर उपहास करते थे। पर फारसी की कहावते और कविताएँ विस्तार से उद्धृत करते रहते थे। मुझे स्वय इसका अनुभव है कि यदि उनके सामने सस्कृत के श्लोक उद्धृत किये जाते थे तो वे उनकी हँसी उडाते थे।

यद्यपि मेरे छोटे-बडे दादा जी के समय ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी के प्रचार का वडा आयोजन किया था, और यह सर्वथा उचित ही है कि उन्हे आधुनिक हिन्दी का जनक माना

जाय, पर मेरे दादा जी दोनो भाई फारसी और अरबी मे ही प्रवीण थे, और उर्दू समाचार-पत्रों को बड़े प्रेम और तत्परता से पढ़ते थे। वे बहुत कम अंग्रेजी जानते थे और संस्कृत से तो पूर्ण रूप से अनभिज्ञ थे। घर पर वे उर्दू ही बोलते थे। ऐसे वातावरण मे पले हुए मेरे ऐसे व्यक्ति को मुसलमान मात्र होने के कारण किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नही हो सकता था। पीछे जब मुझे बड़ी सावधानी से अंग्रेजी और संस्कृत पढ़ायी गयी तब फारसी और उर्दू से मेरा सम्पर्क शीघ्र ही छूट गया। मेरी युवावस्था मे थियासोफिकल सोसाइटी और आर्य समाज ऐसी संस्थाओं का बड़ा जोर था। ये अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं से यह आग्रह करती थी कि आप लोग अपनी धार्मिक पुस्तकों का सावधानी से अवलोकन करे और उनको समझने और उनका आदर करने का प्रयत्न करे। मुझे भी इस प्रकार की शिक्षा पर्याप्त मात्रा मे दी गयी पर मै अपने दादा जी के मित्रों को भूल नही सकता था। उनके कुटुम्बियो और सहधर्मियो से मेरा सौहार्द बराबर बना रहा।

मैं जिन्ना साहब से बहुत देर तक बातचीत करता रहा। उनसे मैने आग्रह किया कि आप उत्तर प्रदेश के आध्यात्मिक जीवन के विकास मे बाधा न डाले। वहाँ हम मिश्रित हिन्दू-मुसलिम संस्कृति का निर्माण कर रहे है। वहाँ की आबादी अधिकतर हिन्दुओं की है पर परम्परागत मुसलिम विचारधारा का बहुत प्रभाव है। जिन्ना साहब ने अपना विचार स्थिर कर रखा था। अपने हाथ मे वह 'पीरपुर रिपोर्ट' लिये हुए थे। उसमे सब दुर्घटनाओं का एक-पक्षीय वर्णन था जिससे प्रमाणित हो कि हिन्दुओं ने मुसलमानो के साथ बड़ा अन्याय किया है। वे ऐसे अल्प प्रभाव के साधारण तथाकथित हिन्दू नेताओं के भाषणो का भी उद्धरण करते थे जो मुसलमानो के विरुद्ध बोलते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'मै पाकिस्तान लेने पर कटिबद्ध हूँ। उन्होने काफी जोर से कहा—'श्रीप्रकाश, मैं तुमसे कहता हूँ कि जैसे ही पाकिस्तान की स्थापना हो जायगी, वैसे ही हमारी सब समस्याएँ तुरन्त हल हो जायेगी।' पर क्या ऐसा हुआ ? जहाँ तक मैं स्थिति को देख सका हूँ जितनी

पुरानी समस्याएं थी वे सब आज भी मौजूद हैं। उनमे से कितनो ने ही अधिक भीषण रूप धारण कर लिया है। साथ ही कितनी नयी-नयी अत्यधिक दु:खदायी समस्याएँ और उत्पन्न हो गयी है जिनके समाधान का कोई मार्ग ही नही देख पड रहा है।

जिन्ना साहब काग्रेस को हिन्दुओ की सस्था मानते थे। उसे वे 'हिन्दू काग्रेस' के नाम से पुकारते थे। वे ऐसे विद्वान् और सम्मानित मुसलमानो को भी नापसन्द करते थे जिनको काग्रेस सगठन मे नेता पद मिला था। जब मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उन्हे पत्र लिखा कि 'आपसे मिलकर मैं कुछ बातचीत करना चाहता हूँ' तो जिन्ना साहब ने उत्तर मे उन्हे 'काग्रेस का पिट्ठू' पुकारा और कहा कि 'पहले तुम काग्रेस को त्याग दो तब मुझसे मिलने के लिए विचार करो।' जब यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ तब जिन्ना साहब के मुसलमान समर्थको ने भी कहा कि 'इस प्रकार से लिखना बडा अशिष्ट है और इससे मुसलमानो की परम्परा को आघात पहुँचता है क्योकि वे सदा से ही शिष्टाचार के लिए प्रसिद्ध रहे है।'

जिन्ना साहब को आसफ अली साहब भी बहुत नापसन्द थे जो उस समय विधान सभा मे काग्रेस दल के सदस्य रहे। जिन्ना साहब ने एक बार सब विधायको को चाय का निमन्त्रण दिया पर आसफ अली को विशेष रूप से छोड दिया। अब सबको स्पष्ट रूप से देख पडता था कि जिन्ना साहब को अग्रेजो का समर्थन है और वे इन्हे उत्साहित करते है। उन्हे साम्प्रदायिक विषवमन करने की पूरी स्वतन्त्रता थी, जब इससे बहुत कम के लिए बडे-बडे हिन्दू नेता जेल भेज दिये जाते थे। अग्रेजो को बुरा लगता था कि काग्रेस स्वतन्त्रता की माँग पेश करती है। इस कारण वे मुसलिम लीग का साथ देते थे। 'शत्रु का शत्रु मित्र होता है'—इस सिद्धान्त के अनुसार अग्रेज शासको ने जिन्ना साहब को अपना निकटतम मित्र बना लिया था।

जिन्ना साहब ने मेरे साथ बडा ही शिष्टता का वर्ताव किया। जैसे-जैसे बात आगे बढती गयी उन्होने कहा—'मैने आतिथ्य मे बडी त्रुटि की। तुम्हे पीने के लिए कुछ दूं?' जिन्ना साहब स्वय

अच्छी से अच्छी शराब पीते थे। बोतलों की अवली लगी थी। तय हुआ कि वे कृपा कर मुझे कुछ शर्बत पिला दें। बात समाप्त हुई। दरवाजे तक आकर उन्होंने मुझे विदा किया। जब मैं जाने लगा तो मैंने उन्हे धन्यवाद दिया कि आपने बड़ी कृपा कर मुझे मिलने का समय दिया। मैंने यह भी दुःख भरे शब्दों में कहा कि 'जिन्ना साहब, आपको तो पाकिस्तान मिल जायगा पर मेरा उत्तर प्रदेश नष्ट हो जायगा।'

पाकिस्तान मे उच्चायुक्त होकर मैं सन् १९४७ मे गया। १५ वर्ष बाद भिन्न-भिन्न पदों पर रहकर मैं १९६२ मे अपने प्रदेश मे फिर लौटा। मैं नही कह सकता कि जो कुछ मैंने उस समय उत्तर प्रदेश के बारे मे कहा था वह सब ठीक हुआ या नही। मैं तो आज काशी, प्रयाग, लखनऊ और प्रदेश के अन्य नगरों को पहचान ही नहीं पाता यद्यपि पहले इन्हे अच्छी तरह जानता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सब कुछ बदल गया है। सम्भव है कि मैं कुछ गलती कर रहा हूँ। ससार मेरे जैसे वृद्धो के लिए नही है। कराची मे मेरा जब सरकारी पद का जीवन आरम्भ हुआ तब फिर मेरी जिन्ना साहब से मुलाकात हुई। मैं भारत का उच्चायुक्त होकर इस नवनिर्मित सर्वसत्ताप्राप्त राज्य मे गया और वे वहाँ के प्रथम महाराज्यपाल (गवर्नर-जनरल) हुए। अब भी मुझे पाकिस्तान और भारत को पृथक्-पृथक् देश कहने मे सकोच होता है। एक ही देश का विभाजन कर, दो स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की गयी है। अपने जीवन भर मैं ऐसा ही मानूंगा।

मैं पाकिस्तान गया

१९४७ की चौथी अगस्त के दिन—मुझे वह तारीख आज भी याद है—मैं तीसरे पहर काशी मे अपने निवास-स्थान पर कुछ पत्रादि देख रहा था कि टेलीफोन की घटी वजी, और प्रधान मन्त्री का वडा आवश्यक सन्देश मुझे दिया गया कि भारत का पाकिस्तान मे उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) होकर मुझे फौरन ही कराची जाना है। मातृभूमि के जीवित शरीर को काटकर इसकी सृष्टि की पूरी तैयारी हो चुकी थी। दो ही दिन पहले सविधान सभा के अधिवेशन से मै दिल्ली से काशी लौटा था। उस समय किसी ने मुझसे इस सम्बन्ध मे कोई वात नही की थी। इस सन्देशे से मुझे वडा आश्चर्य हुआ। स्वराज्य मिलने पर मैंने तो यही सोचा था कि राजनीतिक जीवन मे मुझे अव मुक्ति मिल जायगी। मैंने अपने वाकी जीवन के लिए कुछ दूसरा ही कार्य-क्रम वना रक्खा था। सरकारी पद की तरफ तो मेरा मन कभी भी नही गया था। न मुझे उसकी अभिलाषा थी, न मुझे कभी ऐसा ही विचार हुआ कि उसके लिए मुझे निमन्त्रित किया जायगा।

मैंने उस समय यही कहा कि दूसरे दिन अपना उत्तर दे सकूंगा। अवश्य ही मै नही चाहता था कि देश के जिस विभाजन को मै विल्कुल ही नापसन्द करता था, उसका मै प्रतीक वनूं। जब मैंने अपने कुटुम्बी जनो से परामर्श किया तो सव की यही राय हुई कि प्रधान मन्त्री के निमन्त्रण को मुझे स्वीकार करना चाहिए, जिससे देश के भावी दोनो भागो के वीच सद्भावना स्थापित करने का प्रयत्न करता रहूँ। मेरे पिता श्री डॉक्टर भगवान् दास जी मेरे वहाँ जाने के विरुद्ध थे। मेरी तरफ से तो सदा ही उनकी अभिलाषा यही थी कि जिस प्रकार से उन्होने देश के पुरातन आदर्शो और शास्त्रीय विचारो के प्रचार का सत्कार्य किया, उसी तरह मै भी

करूँ, और उनकी परम्परा को जीवित रखूं। उनका विचार था कि राजनीति से जव स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद मुझे छुट्टी मिल जायगी, तो इस कार्य के लिए मेरे पास पर्याप्त शक्ति और समय रहेगा।

कुटुम्ब के अन्य सदस्यो ने वडा जोर दिया कि मुझे जाना ही चाहिए। इस पर मेरे पिताजी भी राजी हो गये, और दूसरे दिन जव फिर टेलीफोन द्वारा पूछा गया तो मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। मेरे मन मे अवश्य भय था कि जो कठिन कार्य मेरे ऊपर पडेगा उसे सम्भवत मैं सम्हाल न सकूंगा। मुझे तो पता ही नही था कि ऐसे राजनयिक (डिप्लोमैटिक) पद के क्या कर्त्तव्य होते है।

यात्रा की तैयारी के लिए वहुत कम समय था। १५ अगस्त को देश का विभाजन हो जाने वाला था। मै दिल्ली गया। प्रधान मन्त्री से मिला। उन्होने देखा कि मुझमे आत्मविश्वास की कमी है। मै जाने मे सकोच कर रहा हूँ। तव उन्होने कहा कि तुम भारत की तरफ से पाकिस्तान के समारम्भ के उत्सव मे सम्मिलित होकर वापस आ जाना, और तव अन्तिम निर्णय करना कि वहाँ जाना है या नही। विदेश-मन्त्रालय के प्रधान सचिव सर गिरजा शकर वाजपेयी ने मुझे इस पद के कर्त्तव्यो के सम्वन्ध मे कुछ वातें वतलायी, और मुझे विदा किया।

यह वहुत पुरानी प्रथा चली आयी है कि एक देश दूसरे देश मे अपने राजनयिक (डिप्लोमैटिक) प्रतिनिधि स्थायी रूप से रखता है। जिस राज्य मे यह जाते है, वहाँ अपने देश की तरफ से साधिकार वातचीत करने के योग्य समझे जाते है। इनका विशेष पद रहता है। वहुत से स्थानीय नियमो से यह मुक्त रहते है। यह राजदूत कहलाते है। राजदूत के शरीर और उनके दूतावास की रक्षा का विशेष रूप से प्रवन्ध किया जाता है। अपने राज्यप्रमुख से वे प्रत्यय-पत्र (क्रेडेंशियल) लेकर जिस राज्य मे जाते है, वहाँ के राज्य प्रमुख को इसे देते है। उनकी नियुक्ति का यह प्रमाण होता है। जव मै पाकिस्तान गया तो यह नियम उच्चायुक्तो के लिए नही था। व्रिटिश राष्ट्रमण्डल (कौमनवेल्थ) के सभी देशो के प्रमुख इगलैड

के राजा थे। इस कारण जब राष्ट्रमण्डल के एक देश से दूसरे देश मे राजनयिक प्रतिनिधि जाते थे तो उन्हे प्रत्यय-पत्र नही दिये जाते थे। वे राजदूत (एम्बासेडर) नही कहला कर उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) कहे जाते थे। अब भी वे इसी नाम से पुकारे जाते है, पर जब राष्ट्रमण्डल के कई राज्यो ने गणराज्य का रूप ले लिया, तब ऐसे प्रत्यय-पत्र की प्रथा इनके राजनयिको के लिए भी जारी हो गयी। सर गिरजाशकर बाजपेयी ने पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खॉ के लिए मुझे परिचय-पत्र मात्र दे दिया। उन्हे तो मै बहुत वर्षो से जानता था। उन्हे सर गिरजा शकर ने लिखा कि भारत का अभिनन्दन और शुभकामना मै ले जा रहा हूँ।

हवाई जहाज से १२ अगस्त को मै कराची पहुँचा और वहॉ पेलेस होटल मे ठहरा। मेरे लिए वहॉ प्रबन्ध किया गया था। उस समय उसके पास ही नवाबजादा साहब रहते थे। राजदूत सम्बन्धी राजनयिक जीवन के आचरणो से मै पूर्ण रूप से अनभिज्ञ था, और जैसे मै उनसे पहले मिलता था उसी तरह साधारण धोती-कुरता पहने हुए ही उनके मकान पर चला गया, और सीढी पर से जब मै ऊपर की मजिल मे पहुँचा तो वे मुझे मिल गये। वे स्वय ढीला कुर्ता और पाजामा पहने हुए थे, और आराम से घर मे विराजमान थे। उन्होने मेरा बडे प्रेम से स्वागत किया। मैंने सर गिरजा शकर बाजपेयी का पत्र उन्हे दिया और उनके सिखलाए हुए वाक्यो को कहना आरम्भ किया कि 'मै भारत के शासन और जनसाधारण की तरफ से अभिनन्दन और शुभकामनाएँ ।' मै पूरा वाक्य कह भी नही पाया था कि नवाबजादा साहब ने कहा कि 'यह पर्याप्त है, बैठो।' उन्होने कहा कि मेरे आने से वे बहुत प्रसन्न है, और उनको पूरा विश्वास है कि जैसे मेरे और उनके सम्बन्ध पहले शोभनीय थे, वैसे आगे भी बने रहेगे।

मै अपने साथ न किसी सचिव न किसी लेखक को ले गया था। मै तो अकेला ही गया था। होटल के कमरे मे मैंने किसी तरह से दफ्तर स्थापित किया और अपना कार्य आरम्भ किया। वहॉ पर

मुझे बहुत से मुसलमान मित्र मिले जिन्हे मैं काशी, दिल्ली या अन्य स्थानो मे अच्छी तरह से पहले से जानता था। यह सब लोग सरकारी कर्मचारी या साधारण नागरिक के रूप मे पाकिस्तान चले आये थे। उन्होने मुझसे बडे प्रेम की वातें की। ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं पुराने साथियो के ही वीच मे हूँ।

वहाँ पहुँचने के थोडी देर वाद मुझे मालूम हुआ कि उसी होटल मे इगलैड के उच्चायुक्त सर लोरेंस ग्राफ्टी-स्मिथ भी पहुँच गये हैं। मैंने सोचा कि मैं चलकर इनसे मिलूँ और उन्हे अपना परिचय दूँ। मैंने विचार किया कि यह तो अनुभवी राजनयज्ञ (डिप्लोमैंट) होगे ही। वे इस पद का सव काम जानते होगे। मुझे चलकर उनसे कुछ उपयोगी वाते सीख लेनी चाहिएँ। मैंने उनका दरवाजा खटखटाया और शीघ्र ही उनसे मित्रतापूर्ण वाते होने लगी। मैंने उनसे कहा कि 'मै तो केवल आदोलक राजनीतिक जन ही रहा हूँ। आपको तो राजनयिक जीवन का काफी अनुभव होगा।' मैंने यह भी आशा प्रकट की कि वे मुझे हर प्रकार की सहायता देंगे और इस नए अपरिचित जीवन के प्रकारो को मुझे वताएँगे। शीघ्र ही अन्य देशो से आये हुए नए राजदूतो, उच्चायुक्तो और कौसिल जनरलो से मेरा परिचय हुआ, पर सर लोरेंस से मेरा विशेष निकट सम्वन्ध वरावर बना रहा।

देर तक वात करने के वाद मुझे आश्चर्य हुआ जव उन्होने केवल इतनी ही सलाह दी कि 'व्यर्थ कार्यो को आमन्त्रित मत करना, जो कार्य तुम्हारे पास स्वय आये उसे कर देना।' शीघ्र ही कार्य के भयानक वोझ पर वोझ मुझ पर गिरे, और वडी चिन्ता और व्यस्तता मे मेरे दिन वीतने लगे। कराची नगरी से मैं पहले से ही परिचित था। दो वार मैं यहाँ आ चुका था। १९३१ मे काग्रेस का अधिवेशन यहाँ हुआ था। उस समय मैं काग्रेस का मुख्य सचिव था। नमक सत्याग्रह की समाप्ति पर यह अधिवेशन यहाँ किया गया था। फिर मैं १९४५ मे शिक्षा सम्वन्धी केन्द्रीय परामर्श समिति के सदस्य के नाते उसकी वैठक मे यहाँ आया था। विधान-सभा से मैं निर्वाचित किया गया था। इस समय मैं केवल शासकीय कार्य

पर आया था, पर प्रथम बार तो मैं ऐसे समय आया था जब हम अपने राजनीतिक आन्दोलन की आशिक सफलता को मना रहे थे। हाल के नमक सत्याग्रह और उसके बाद ब्रिटिश शासन की तरफ से देश के नेताओ को गोलमेज सम्मेलन मे आने का निमन्त्रण, इस सफलता का द्योतक था।

लाहौर के अपने दिसम्बर १६२६ के अधिवेशन मे काग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया था। लाहौर और कराची दोनो ही नगरियाँ जो अब पाकिस्तान मे है, देश के स्वतन्त्रता सग्राम मे विशेष स्थान रखती है। यह दु ख की बात है कि उन्हे अब भारत का अग नही माना जा सकता। इस स्थिति पर जो मुझे पीडा थी वह समझी जा सकती है। कराची के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नेता जमशेद मेहता मुझसे हवाई अड्डे पर ही मिले थे। मेरे पिता के यह मित्र थे। वास्तव मे यह सब के ही हितैषी थे। सब की ही सहायता करने के लिए ये सदा उद्यत रहते थे। कराची नगरी के यह सर्वमान्य नागरिक थे। इन्होने अपने सरक्षण मे मुझे यहाँ आते ही ले लिया। कुछ ही वर्ष पीछे इनकी मृत्यु हो गयी। इनका दिल टूट गया था। जिस नगर की इन्होने इतनी सेवा की थी, जिसे इन्होने इतना ऊँचा पद दिलाया था, वह ही उन्हे भूल गया। जहाँ इनका इतना मान था, जहाँ के लोगो मे इनके लिए इतना प्रेम था वही यह अपरिचित हो गये।

मेरे कराची पहुँचने के कुछ ही घटो बाद श्री चौथराम गिडवानी मुझसे मिलने आये। यह वहाँ के बहुत पुराने और सम्मानित काग्रेसी नेता थे। यह स्वभाविक ही था कि इन्हे देखकर मै बडा प्रसन्न होऊँ। मै उनका अभिनन्दन करने दौडा, पर वे बहुत क्रुद्ध थे। उन्होने पूछा कि मैं यहाँ क्यो आया हूँ ? उन्होने कहा कि वे स्वय प्रातीय काग्रेस समिति के लगातार २५ वर्षो से अध्यक्ष रहे है। जब वे इस काम के लिए मौजूद थे तो मेरे आने की क्या आवश्यकता थी। मैं स्तब्ध रह गया। मैंने उनसे यथासम्भव शान्ति के साथ कहा कि वास्तव मे यहाँ आने के लिए मै स्वय जिम्मेदार नही हूँ। उन्हे प्रधान मन्त्री के पास जाकर पूछना चाहिए कि उन्होने मुझे क्यो भेजा ?

मैने श्री चौथराम जी से यह कहने का साहस किया कि मुझे दुख है कि वे इतने दिनो से प्रान्तीय काग्रेस समिति के अध्यक्ष के पद का भार वहन करते रहे। मुझे तो अपने प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की ही प्रथा अच्छी लगती है, जहाँ कोई भी प्रान्तीय समिति का अध्यक्ष एक साल से अधिक नही रह सकता। यही कारण है कि मेरे ऐसे भी वहुत से लोग एक के वाद एक अध्यक्ष हो सके। यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति ही ऐसे पद पर अनन्याधिकार जमाये रहते तो हम सव को इस पद की जिम्मेदारी सीखने का अवसर न मिलता। जो कुछ हो, वे वडे ही रुष्ट थे, और मुझे इसका दुख हुआ कि जिन्ही मित्रो और सहयोगियो मे मै सहायता की सवसे अधिक अपेक्षा करता था, वे ही मेरे आने से असन्तुष्ट हो गये।

तथापि मैने श्री गिडवानी से कहा कि मै तो यहाँ पर विल्कुल ही अपरिचित हूँ, और मै आशा करता हूँ कि वे मुझे अवश्य अपने काम मे सहायता देंगे। मैने उनसे कहा कि स्वतन्त्रता दिवस के सम्मान मे १५ तारीख को प्रात काल होटल के अपने कमरे के सामने मैं अपना राष्ट्रीय झण्डा फहराऊँगा। उस समय तो वह कमरा ही भारत का पाकिस्तान मे दूतावास था। मैने यही आशा प्रकट की कि वे भी उत्सव मे अवश्य आवेंगे। उन्होने कहा कि मैं किसी उत्सव मे नही जा सकता। सिन्ध का वलिदान देकर जो स्वतन्त्रता मिली, वह सच्ची स्वतन्त्रता नही हो सकती। तथापि उन्होंने कहा कि मै कुछ लडकियो को भेज दूंगा जो झण्डे को ऊँचा करते समय वन्दे मातरम् का राष्ट्रीय गीत गा देंगी; किन्तु समय पर कोई लडकी नही आयी। छोटा सा वाँस जो मुझे मिल सका, उसे अपने कमरे के सामने के घास के मैदान मे गाड़ कर मैने उस पर अपना तिरगा झण्डा फहराया, और जिस प्रकार से वन सका मैने स्वय ही वन्दे मातरम् गीत को गाया। होटल के कर्मचारियो ने जहाँ तक हो सका मेरी मदद की, और जव तक मै वहाँ रहा वे झण्डे पर रात्रि को रोशनी भी कर देते थे। झण्डे के सम्वन्ध मे उपचार मुझे पीछे वताये गये और उनके अनुसार नव सव कृत्य होने लगे।

दूसरे दिन तत्कालीन वायसराय और गवर्नर-जनरल लार्ड माउण्टबैटन अपनी पत्नी सहित कराची आये। वे इस नये राज्य का उद्घाटन और समारम्भ करने के लिए आये थे। संविधान सभा मे कुछ औपचारिक कृत्य हुए। रात्रि को भोज हुआ, भाषण हुए, और जब सब कार्य सम्पन्न हो गया, तो मै दिल्ली होता हुआ काशी गया जिससे कि मै इस बात पर विचार कर सकूँ कि मै उच्चायुक्त के पद को स्वीकार करूँ या नही, और यदि करूँ तो घर का पूरा प्रबन्ध कर, बहुत दिनो तक बाहर रहने के लिए तैयार होकर लौटूँ। दु ख है कि विभाजन के साथ ही साथ चारो तरफ हत्याएँ और बलात्कार होने लगे। भारत और पाकिस्तान के नये सर्व सत्ता प्राप्त राज्यो का समारम्भ होते ही चारो तरफ निर्दोषो की निर्मम हत्याएँ होने लगी और लाखो नर-नारी अपने घरो को छोड-छोड कर चले जाने के लिए तैयार हो गये। ऐसी अवस्था मे सब हँसी-खुशी गायब हो गयी, और चारो तरफ मातम छा गया।

मै काशी प्रात काल पहुँचा। विचार कर रहा था कि यदि वापस जाना ही मै तय करता हूँ तो मुझे काफी समय मिल जायगा जिसमे मै अपना असबाब आदि बॉध सकूँगा। मुझे तो सोचने का समय ही नही दिया गया। मुझे फौरन दिल्ली बुलाया गया और उसी शाम को मै काशी से वापस रवाना हो गया। दिल्ली पहुँचने पर मुझे लाहौर भेज दिया गया। उस समय मै कराची नही गया। जो इधर के तीन चार दिन बीते थे, उनमे भीषण उत्पात हुआ। लाखो लोग इधर से उधर जाने लगे। सीमा के दोनो ही तरफ भयानक घटनाएँ घट रही थी। लाहौर मे तो ऐसा मालूम पडता था कि युद्ध के लिए नाकाबन्दी हो रही है। लाला लाजपतराय के पुराने निवासस्थान लोकसेवक मण्डल के केन्द्र लाजपत भवन मे हजारो स्त्री-पुरुषो ने आश्रय लिया। यह लोग पजाब के सुन्दर प्रदेश के पश्चिमी भागो से वहाँ आकर यकायक एकत्र हुए थे। यह भाग पाकिस्तान के अन्तर्गत हो गया था।

पश्चिमी पजाब मे भारत के उप-उच्चायुक्त सरदार सम्पूर्ण सिह

के वडे मकान की छोटी सी कोठरी के एक कोने मे मुझे ठहराया गया। उप-उच्चायुक्त का मुख्य कार्य-केन्द्र लाहौर ही समझा गया। इनके मकान मे भी शरणार्थी ठसाठस भरे हुए थे। सरदार सम्पूर्ण सिंह लायलपुर के रहने वाले थे। वहाँ पर मैं इनका एक वार अतिथि हो चुका था। वहाँ वे कितनी शान मे रहते थे। मुझे उनकी दशा को देखकर उतना ही दु ख हुआ जितना कि लाला लाजपतराय के मकान को देखकर हुआ था। वहाँ भी शरणार्थी एकत्र हो रहे थे, और वहाँ भी मैं पहले कितनी वार ठहर चुका था।

लाहौर और कराची

१९४७ के अगस्त मास के आखिरी दिनो मे जब मै पाकिस्तान मे भारत के उच्चायुक्त की हैसियत से लाहौर पहुँचा तो जो दृश्य मुझे देख पडे वे वास्तव मे बहुत दु खदायी और चिन्ताजनक थे। मेरे मन मे तो ऐसा विचार नही ही आता था कि मुझे किसी प्रकार का शारीरिक भय है। लाहौर नगर से मै अपरिचित भी नही था। दिसम्बर १९२९ के काग्रेस अधिवेशन मे मै प्रथम बार वहाँ गया था। उसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू थे। वहाँ पर काग्रेस की तरफ से घोपणा की गयी थी कि पूर्ण स्वतन्त्रता ही देश का लक्ष्य है। उस समय मै काग्रेस का प्रधान मन्त्री बनाया गया। इसके बाद कितनी ही बार मुझे लाहौर जाने का अवसर मिला।

लाहौर के नागरिको का यह आदर्श था कि अपने नगर को वे फ्रास की राजधानी पैरिस की तरह बनावे। बडी-बडी सडके वहाँ हों, सडको के बगल मे चौडी पटरियो पर फूलो की क्यारियाँ कटी हो। यहाँ महल बने। खुले मैदान हो। बडे-बडे उद्यान लगाए जाये। बहुत से सम्पन्न पजाबी विविध व्यवसायो मे धन कमा कर लाहौर मे अच्छे-अच्छे भवन बनाते थे, और वृद्धावस्था मे वहाँ रहना पसन्द करते थे। बहुत से मध्यवर्ती सम्पन्न लोग लाहौर के चारो तरफ उप-नगर बसाते थे और वहाँ आराम से रहते थे। लाहौर नगर मे वास्तव मे हिन्दुओ की सख्या अधिक थी, और यह आशा की जाती थी कि देश के विभाजन पर लाहौर भारत को मिलेगा। विचार था कि रावी नदी दोनो नये राज्यो के बीच की स्वाभाविक सीमा मानी जायगी। यदि ऐसा किया जाता तो लाहौर हमे ही मिलता। राजनीतिक तर्क वितर्क के कारण लाहौर पाकिस्तान को दे दिया गया।

विभाजन के बाद पश्चिमी पजाब के सभी हिन्दू और सिक्ख

घर छोड-छोड कर चल पडे। यकायक वातावरण मे भय का सचार हो गया। लाखो स्त्री-पुरुष और वच्चे लाहौर आये, और वहाँ से अमृतसर और अन्य पूर्वी स्थानो पर फौरन जाने के लिये आतुर हो रहे थे। जब मै वहाँ पहुँचा तव जो दृश्य मैने देखा उसकी स्वप्न मे भी मुझे आशका नही हो सकती थी। मै स्तम्भित रह गया। जब मेरे साथ हथियारवन्द सिपाही रक्षा के लिये तैनात किये गये, और मुझसे कहा गया कि बिना इनको साथ लिये कही मत जाना, तव मैने अनुभव किया कि शायद किसी प्रकार का भय है। अपने पुराने मित्रो से मैने मिलना चाहा, पर वे तो पहले ही वहाँ से चले गये थे। लोक सेवक मण्डल (लाला लाजपतराय की 'सरवेंट्स ऑफ दी प्यूपिल सोसाइटी') के मुख्य स्थान चिरपरिचित लाजपत भवन मे मै गया और जो कुछ मैने वहाँ देखा उससे दु ख और आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और श्री अचिन्तराम को मैंने वहाँ पहचाना। वे इन उद्‌वासे हुए स्त्री-पुरुषो को सान्त्वना दे रहे थे, और उनके प्रवास के लिये प्रबन्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे।

जब मैं इन लोगो के बीच यकायक पहुँचा तो वे सब भडक उठे। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने क्रुद्ध होकर मुझसे कहा कि 'तुम अब तक कहाँ थे, तुम जो हमारे उच्चायुक्त बने हुए हो।' मैं ठीक समझ नही पा रहा था कि क्या हो रहा है कि इतने मे कोई सज्जन गुस्से मे भरे हुए अपने दोनो हाथो को इस मुद्रा मे करके मेरी तरफ आने लगे जैसे कि कोई दूसरे का गला घोटने के लिये करता है। उन्होने चिल्ला कर कहा कि 'तुम हमारे उच्चायुक्त बने हो। हमे तुमने इस दशा मे छोड दिया है तुम तुम ।' मैं चुपचाप बैठा था। आज जब उस दृश्य का स्मरण करता हूँ तो मुझे ऐसा ही मालूम पडता है कि मुझे उस समय पूर्ण विश्वास हो गया था कि यह आदमी मेरा गला घोट देगा। पर मैं न घबराया, न डरा, और न मैं नैतिक या शारीरिक दृष्टि से अपनी रक्षा के लिये प्रवृत्त ही हुआ। श्री अचिन्तराम ने आगे बढकर उन सज्जन को रोका, और मैं सही सलामत वापस आ गया।

जिस रूप मे मैने उस समय लाहौर को देखा, उसमे मैने उसे न कभी पहले देखा था, न कभी देखने की आशका ही कर सकता था। पश्चिमी पजाब के राज्यपाल सर फ्रैंक म्यूडी थे। २५ वर्ष पहले यह मेरी नगरी काशी मे ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट थे। शासन की तरफ से नगरपालिका के सदस्य थे। मै उसका निर्वाचित सदस्य था। मै तबसे इन्हे अच्छी तरह से जानता था। दिल्ली की विधान-सभा मे भी इनसे बराबर मुलाकात होती रही। अन्य कितने ही ब्रिटिश अफसरो की तरह यह भी पाकिस्तान की स्थापना के समर्थक थे। उसकी स्थापना के बाद प्रान्तीय राज्यपाल बनाये गये। जब एक तरफ लाखो आदमी लाहौर मे राज्य से बाहर चले जाने के लिये एकत्र हो रहे थे, तब वहाँ के राजभवन मे उच्चतम अधिकारियो की बैठक हुई जिसमे हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल जनाब जिन्ना साहब आदि मौजूद थे। अवश्य ही उन लोगो ने वहाँ की स्थिति पर विचार किया होगा जिसमे करोडो लोग अपने घरो को छोड कर एक तरफ से दूसरी तरफ चले जा रहे थे।

अपने उप-उच्चायुक्त सरदार सम्पूर्णसिह के मकान के एक कोने मे जब मै किसी न किसी प्रकार पडा हुआ था, तब जनरल रीज नाम के अग्रेज फौजी अफसर मुझसे मिलने आये। इनके आने से मुझे आश्चर्य हुआ। वे उस समय बडे क्रुद्ध प्रतीत होते थे। मेरे साथ जो सेना के मेजर दिल्ली से गये थे, उन्होने जब कुछ कहना चाहा तो जनरल साहब ने उन्हे धमका कर रोक दिया, और कहा कि 'मेरी बात काटने या मुझसे बहस करने का मेरे किसी मातहत को कोई अधिकार नही है। तुमसे बहुत ऊँचा अफसर मै हूँ।' जनरल साहब मेरी तरफ देख कर कहने लगे कि 'आश्चर्य की बात है कि एक छोटा फौजी मुझसे इस तरह बात करने का साहस करे।' जहाँ तक मै समझ सका मेरे साथी मेजर साहब ने तो कोई ऐसी बात नही कही थी जिस पर कि आपत्ति की जा सकती। मेरे लिये यह सब काम नया था। मै नही जानता था कि फौज के भिन्न-भिन्न स्तरो के अफसरो को एक दूसरे से किस तरह बात करनी

चाहिए। मैं स्थिति ठीक तरह समझ नही पा रहा था। जब मैंने पश्चिमी पाकिस्तान की दुर्घटनाओ और निर्दोष लोगो की हत्याओ के सम्बन्ध मे जनरल साहब को कुछ सूचना दी तो उन्होने मुझसे साफ-साफ और काफी कठोरता के साथ कहा कि 'मैं न किसी हिन्दू न किसी सिक्ख के जीवन के सम्बन्ध मे जिम्मेदारी ले सकता हूँ जब तक पूर्वी पजाब के एक-एक मुसलमान की पूरी सुरक्षा नही होती।'

जहाँ तक याद आता है उस समय सीमा की देख-भाल के लिये कुछ फौजी और कुछ गैर-फौजी लोगो की समिति तैनात की गयी थी। दोनो तरफ के लोगो की रक्षा का कार्य उनके सुपुर्द था। मैंने जनरल साहब से कहा कि 'हम लोगो को पक्षपात नही करना चाहिए। सब लोगो की सुरक्षा के लिये हम जिम्मेदार है।' उनको यह बात ठीक नही जँची। उनकी कृपा थी कि वे मुझसे मिलने आये, पर हमारी बातचीत का कोई परिणाम नही हुआ। दूसरे दिन जिन्ना साहब कराची से हवाई जहाज से आये और उनके स्वागत के लिए जनरल साहब और मैं दोनो ही हवाई अड्डे पर गये। जनरल साहब ने जिन्ना साहब का बडे उत्साह से स्वागत किया, और जब मैं उनके पास गया तो उन्होंने मुझे पहचाना भी नही।

सरदार सम्पूर्णसिह के साथ मुख्य मन्त्री ममडोट के नवाब साहब के कार्यालय मे स्थिति की विवेचना करने मैं प्रतिदिन जाता था। एक दिन तीसरे पहर यकायक चपरासी ने आकर मुझसे कहा कि ब्रिगेडियर थिमाया और ब्रार मुझसे मिलना चाहते है। यह दोनो ही पीछे बडे-बडे जनरल हुए। उनसे मिलने मै बाहर गया। उन्होने मुझे बताया कि शेखूपुरा से सरगोधा तक आज रात्रि को भयावह हत्याएँ होने की सम्भावना है। क्या मैं स्थिति को बचाने के लिये कुछ कर सकता हूँ। मै फौरन ही भीतर भागा गया और नवाब साहब से मैंने पूछा कि 'क्या आपको इन फौजी अफसरो से मिलने मे कुछ आपत्ति तो न होगी?' उन्होने इन्हे भीतर बुला लिया, और जब इन्होने हाल बताया तो उन्होने कहा कि 'मुझे तो इसका

विश्वास नही होता, पर जब आपके ऐसे जिम्मेदार अफसर कह रहे हैं, तो मुझे मानना ही होगा।'

पुलिस के मुखिया जनाब कुरबान अली भी वहाँ मौजूद थे। उनकी ईमानदारी और निष्पक्षता की बहुत प्रसिद्धि थी। अपने हाथ को टेबुल पर पटकते हुए उन्होने कहा कि 'पाकिस्तान का नाश हो, हिन्दुस्तान का नाश हो। क्या यह विभाजन जनसाधारण के हित के लिये किया गया, या उनकी बरबादी के लिये।' मेरे साथ दिल्ली से दीवान चमनलाल भी गये हुए थे। कुरबान अली साहब और वे उसी क्षण गुजराँवाला और शेखूपुरा की तरफ रवाना हो गए। मध्य रात्रि मे वहाँ पहुँचे और ठीक समय पर पहुँच कर स्थिति सम्हाली। पूर्वी पजाब से जो हमारे पास खबरे आती थी उनसे भी यही मालूम होता था कि वहाँ भी स्थिति ऐसी ही खराब है। कैसी शत्रुता का वातावरण उस समय तैयार किया गया था। एक दिन पहले के भाई और साथी, एक दूसरे का आज गला काट रहे थे। परस्पर की कोई व्यक्तिगत शत्रुता उनमे नही थी। ऐसे दुराचरण का कोई कारण भी नही था। केवल इस कारण ऐसी बर्बरता हो रही थी कि उनके सम्प्रदायो के नाम भिन्न-भिन्न थे, ये ईश्वर को भिन्न-भिन्न नामो से पुकारते थे, और उसकी उपासना भिन्न-भिन्न प्रकार से करते थे।

हमारे भारत के गवर्नर-जनरल की पत्नी लेडी माउण्टबेटन के साथ हमारे प्रधान मन्त्री लाजपत भवन देखने गये। पीछे पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ के साथ हवाई जहाज से पूर्वी और पश्चिमी पजाब के कई जिलो का उन्होने दौरा किया। इसी बीच एक और दल जिसमे भारत की ओर से तत्कालीन रक्षा मन्त्री सरदार बल्देवसिह और मै थे, और पाकिस्तान की तरफ से केन्द्रीय मन्त्री अब्दुर्रब निस्तर और मेजर अय्यूब थे, दौरे पर निकला। यही मेजर अय्यूब आज पाकिस्तान के फील्ड मार्शल राष्ट्रपति अय्यूब है। हम सबने सडक से मोटर द्वारा पश्चिमी और पूर्वी पजाब के कतिपय जिलो का दौरा किया। कितने ही ग्रामो के बगल से हम गुजरे जहाँ जलते हुए घर देख पडे।

सडक से कुछ ही दूर पर एक स्थान पर जलते हुए तिमजले मकान को दिखा कर सरदार बलदेवसिंह ने मुझसे कहा कि अवश्य ही यह गाँव सिक्खो का होगा। जब उन्होने उस स्थान को 'ग्राम' की उपाधि दी तो मुझे आश्चर्य हुआ क्योकि उत्तर प्रदेश मे ग्रामो मे तो हमे केवल छोटी-छोटी झोपडियाँ ही देख पडती हैं। ग्राम मे तीन मजिल का पक्का मकान हो सकता है, ऐसा मै सोच भी नही सकता था। इसी से प्रमाणित होता है कि कितना घोर परिश्रम करके सिक्खो ने पजाब को वैभवशाली बनाया था।

जम्मू से सटे हुए स्यालकोट मे भी मैने हिन्दू और सिक्खो को एकत्र हुए पाया जो वहाँ से चले जाने के लिये तैयार थे। बाल्यावस्था मे ही स्यालकोट का नाम मैने सुना था, क्योकि गण्डासिंह झण्डासिंह के कारखानो से क्रिकेट और टैनिस के बल्ले मगवाया करता था। निर्जन नगरी की सडको पर जब मै गया तो देखा कि कितने ही मकान जल रहे है। क्रोध मे भरे पाकिस्तानियो को कुछ दिन पीछे यह ज्ञान हुआ कि हिन्दू और सिक्खो के वहाँ के मकान जला कर वास्तव मे वे अपनी ही सम्पत्ति नष्ट कर रहे हैं। दुख है कि उस समय आवेश मे बिना सोचे विचारे उन्होने हिन्दुओ और सिक्खो को अपना शत्रु मान लिया था। कसूर स्टेशन के पास जब हम पहुँचे तो वहाँ के स्टेशन पर अद्‌भुत दृश्य देखने को मिला। वहाँ पर दो रेले बगल-बगल खडी थी। एक का इजिन पश्चिम की तरफ और दूसरे का पूर्व की तरफ लगा था। दोनो मे ही नर-नारी और बच्चे भरे थे। वे डब्बो की छतो पर भी लदे थे। अपने कुलो के सदियो के बसे घरो को उजाड कर ये चले जा रहे थे। उन्हे यह भी नही मालूम था कि कहाँ जाना है। इस दृश्य को देख कर शायद दानव भी रो पडता।

प्रधान मन्त्री का दल और हमारा दल जालधर मे राज्यपाल श्री चन्दूलाल त्रिवेदी के भवन मे मिला। उन्होने हमारा बडा स्वागत किया। उनके मकान के आहाते मे शरणार्थी और भयभीत स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। वहाँ से हम सब वापस लाहौर आये। इस दौरे मे हमने देखा कि पूर्वी और पश्चिमी पजाब दोनो ही तरफ

वडे-वडे समुदायो मे लोग चले जा रहे है। जो कुछ वे अपना माल ले जा सकते थे सब साथ ले जा रहे थे। कभी-कभी मै मोटर से उतर कर इन लोगो से पूछता कि 'आप कहाँ जा रहे है ? क्यो जा रहे है ?' मै उनसे कहता कि 'आप मत जाइये, अपने घर पर ही वने रहिये।' वे उत्तर देते कि 'हम कुछ नही जानते। हम चले जा रहे है और अवश्य चले जाएँगे।' दृश्य दयनीय था। मालूम नही कितने ही रास्ते मे मर गये होगे। इतिहास वताता हे कि समय-समय पर और देश-देश मे किन्ही विशेप कारणो से जनसमुदाय एक स्थान से दूसरे स्थान पर गये है, लेकिन शायद ही कही अपने देश के जैसा उदाहरण मिले।

देश के दु खद विभाजन के वाद करोडो स्त्री-पुरुष एक तरफ से दूसरी तरफ चले गये। जो विदेशी इस दृश्य को देखने के लिए आये थे, वे भी आश्चर्य कर रहे थे कि कैसे इतने लोग स्वत विना सरकारी सहायता और व्यवस्था के अपने-अपने ऊपर ही भरोसा करके अपना प्रवन्ध स्वय करके चले गये। उन्होने पूर्वी यूरोप मे इसी प्रकार की कुछ घटनाओ का उल्लेख किया पर वहाँ तो लाख दो लाख लोगो को ले जाने और ले आने मे कितना समय लगा था और कितना प्रवन्ध करना पडा था। अगस्त और सितम्बर १९४७ के पजाव मे पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व लाखो स्त्री-पुरुषो ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का प्रवन्ध स्वय ही कर लिया था।

वहाँ करीव पन्द्रह दिन ठहर कर और उच्चायुक्त के पद से जो कुछ हो सका वह करके मै दिल्ली वापस आया। प्रधान मन्त्री मुझे अपने हवाई जहाज पर लेते आये। नीचे के दृश्यो को देखने के लिये जहाज पृथ्वी के पास से ही उडाया गया। वहाँ से भी हम यही देख रहे थे कि हजारो स्त्री-पुरुप चले जा रहे है। मै अव इस पद से वच नही सकता था। चाहे मै पसन्द करूँ या न करूँ, मुझे तो यह स्वीकार करना ही पडा। मैने प्रधान मन्त्री से कहा कि मै घर जाकर आठ-दस दिन मे वहाँ का सब प्रबन्ध कर पाकिस्तान मे वहुत दिनो तक ठहरने के लिये लौट आऊँगा। दु खद दृश्य की

प्रतिमा को अपने मन मे रख कर, मैं अपने घर काशी की तरफ चला, और हृदय मे मुझे यही विचार बराबर व्याकुल करता रहा कि यदि मेरी नगरी काशी पाकिस्तान मे चली गयी होती तो मुझे कैसा लगता और मैं क्या करता।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जब हम किन्ही को तथाकथित उच्च स्थानो पर देखते है तो हमे ऐसा ही आभास होता है कि ये बडा आनन्द कर रहे है। इनकी बडी महिमा है। कुछ लोगो का यह भी विचार हो सकता है कि ये वडे शान और आराम से रहते है। इन्हे कुछ काम नही करना रहता। इनकी कोई जिम्मेदारी नही है। इसमे कोई सन्देह नही कि उच्च पदस्थ शासकीय अधिकारियो को अपने देश मे आवश्यकता से अधिक मान दिया गया है और उनके निवासस्थान, यात्रा आदि का भी वहुत अधिक प्रदर्शन के साथ प्रवन्ध किया जाता है। यही आशा की जा सकती है कि अन्य देशो के उच्च अधिकारियो की ही तरह यहाँ के भी अधिकारियो के जीवन का क्रम और प्रकार साधारण नागरिको की ही तरह हो जायगा और व्यर्थ के आडम्बर से परहेज किया जायगा। सबको यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारा स्वराज्य अभी थोडे ही दिनो का है। यहाँ पर राजशाही ठाठवाट की पुरानी परम्परा है। जो भी अधिकार के स्थान मे आता है, वही कुछ ठाठबाट को पसन्द करने लगता है और इसकी कुछ आवश्यकता भी हो जाती है।

इसे हमे भूलना नही चाहिए कि मत्सर मनुष्य की प्रकृति का वहुत भारी दोप है। यह वात-वात मे वेमतलव उभड पडता है। इससे सवको ही परहेज करना चाहिए। न दूसरो को ऐसा समझ कर कि यह अकारण बडा हो गया है उससे वुरा मानना चाहिये, न किसी को ऐसा अवसर ही देना चाहिए कि दूसरे उससे वुरा माने। यह भी वात स्मरण रखने की है कि जव ऐसे लोगो मे जो साथ और वरावरी के रहे हैं, कोई उच्च पदस्थ हो जाता है और कोई पीछे छूट जाता है तो द्वेष पैदा होता है। यह भाव साधारणत वहुत दूर के लोगो के प्रति नही होता, पास के ही लोगो के प्रति होता है।

जब से हमे स्वराज्य मिला है तब से इसकी अनिवार्य आवश्यकता हुई कि भिन्न-भिन्न लोग विविध स्थानो पर रक्खे जायें जहाँ पहले अग्रेज ही रहते थे। स्वराज्य मे यह भी आवश्यक हुआ ही कि बहुत से नये-नये पदो का निर्माण किया जाय जहाँ पर अपने ही भाई स्थापित हो। ऐसी अवस्था मे मत्सर का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया और विगत १८ वर्षो मे जब से हमने स्वतन्त्रता का पद पाया है और गणराज्य अर्थात् सबके बराबर होने का रूप धारण किया है, तबसे हम इस दुर्भाव का विशेष रूप से कटु अनुभव कर रहे है।

सितम्बर १९४७ के आरम्भ मे जब लाहौर मे लौटकर दिल्ली मे प्रधान मन्त्री से यह कहकर विदा हुआ कि दस दिनो मे अपना सब असबाब वगैरह लेकर वापस पाकिस्तान चला जाऊँगा और जिस पद को मैंने अस्थायी रूप से ही स्वीकार किया था, उसे स्थायी रूप से स्वीकार करता हूँ, तब मुझे कुछ ऐसे अद्भुत अनुभव हुए जिनको कह देना उचित होगा। सम्भव है कि सभी सरकारी पदो पर जाने वाले सार्वजनिक जनो का ऐसा अनुभव हो। मेरी अवस्था उस समय ५७ वर्ष की हो चुकी थी। साधारणत यह ससार के सक्रिय कार्यो से पृथक् होने की अवस्था होती है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद मेरी आकाक्षा थी कि पृथ्वी पर कुछ भ्रमण करता। दो-दो महायुद्धो के बाद विविध देशो की परिवर्तित अवस्था को स्वय देखना चाहता था। १९१४ मे जब कैम्ब्रिज की शिक्षा समाप्त कर मैं अपने देश लौटा था, तब से बाहर जाने का मुझे कोई अवसर नही मिला था। सयोगवश नेपाल अवश्य गया था। नेपाल का और भारत का इतना निकट सम्बन्ध सदा से रहा है कि उसे विदेश मानना कठिन है। मैं पूर्वी देशो को देखने की लालसा रखता था। चीन, जापान आदि मे भ्रमण की विशेष अभिलाषा थी। ऐसी दशा मे पाकिस्तान जाना मुझे अखरा। देश के विभाजन से ही मुझे चिढ थी। पर जब प्रधान मन्त्री ने मुझसे यह कहा कि 'यदि ऐसे समय ही मेरे मित्र मेरा साथ न देंगे तो कब देंगे' तब मैं निरुत्तर हो गया और वहाँ चला गया।

जो १० दिन दिल्ली मे प्रधान मन्त्री से विदा होने और कराची फिर पहुँचने के बीच मेरे घर पर बीते, जब असबाब बाँधने और अपने सहायको को वहाँ ले जाने का प्रबन्ध कर रहा था, उसमे जो मेरे अनुभव हुए उनसे मुझे बडी शिक्षा मिली। सम्भव है दूसरे मेरे भाइयो को भी मिल सके। पाकिस्तान की स्थापना को केवल २० दिन हुए थे। वडे जोरो से हिन्दू और सिक्ख पजाव से तो चल निकले ही थे जैसा मै बतला चुका हूँ, अब सिन्ध से भी निकलने की तैयारी करने लगे थे। मार-काट भी खूब शुरू हो गयी थी। मै नही कह सकता कि किन्ही ने यह अनुमान किया था या नही कि ऐसा होना सम्भव है। पर हुआ ऐसा ही। जो हमारे पुराने काग्रेसी भाई और साथी सिन्ध से दिल्ली आ गये थे उन्होने वहाँ की स्थिति के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा हो, या न कहा हो, मेरे सम्बन्ध मे बहुत सा विकार अवश्य फैलाया। दिल्ली से काशी आता हुआ मै कुछ मित्रो से मिलने के लिये एक दिन के लिये कानपुर उतर गया। मैने यह सोचा कि इनसे मिल लूं। मालूम नही आगे कब मिल सकूंगा। बिना मेरे कुछ कहे और जाने वहाँ पर मुझे इनकी तरफ से चाय पार्टी दी गयी। जलपान और भाषणो का प्रवन्ध किया गया। इतने मे उधर से सिन्ध-वलूचिस्तान, पजाव आदि मे मारकाट की खबरे जोरो से आने लगी। लखनऊ के एक पत्र ने मेरे लिये लिखा कि ये हाई कमिशनर क्या बनाये गये है घर पर छुट्टी मना रहे है। अग्रेजो के शब्द 'हालीडेइग' का प्रयोग किया गया। पत्र ने यह भी कहा कि ये अपने लिये चाय पार्टियो का भी प्रवन्ध करा रहे है।

सवेरे शाम दोनो समय कई दिन तक रेडियो से यह समाचार प्रसारित किया गया कि 'श्री चौथराम गिडवानी ने (जो सिन्ध काग्रेस कमेटी के २५ वर्षो से अध्यक्ष रहे थे और जो अब दिल्ली पहुँच गये थे) सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखा है कि श्री श्रीप्रकाश फौरन पाकिस्तान वापस जाये। वहाँ की स्थिति को देखे।' जब दो-तीन दिन तक वरावर सवेरे शाम मैने रेडियो मे यह खबर सुनी तो मुझे वडा क्षोभ हुआ। उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल ही इस विभाग के मन्त्री थे। मैने समझा कि इन्ही की अनुमति

से यह सन्देशा बार-बार दुहराया जा रहा है जिससे जनसाधारण को मेरी लापरवाही का परिचय हो जाय। इस बीच मे प्रधान मन्त्री का मुझे तार मिला जिसमे उन्होने लिखा कि 'मुझे आशा है कि पूर्व निर्धारित १४ तारीख तक अपना सब प्रबन्ध कर तुम वापस आकर अपना कार्य सम्भाल सकोगे।' मैं उस थोडे समय मे पिताजी की इच्छा के प्रतिकूल भी, जिसका मुझे विशेष दु:ख था, सब असबाब बाँधकर कठिनाई से सहायक और नौकरो को जाने पर राजी कर दिल्ली पहुँचा। उस समय महात्मा गाधी दिल्ली मे बिडला भवन मे ठहरे थे। उनसे मैं मिलने गया। वहाँ पहुँचते ही मुझे श्री घनश्यामदास बिडला मिले। अलग ले जाकर उन्होने मैत्री भाव से मुझसे कहा कि 'तुम गाधी जी से मिलने तो जाते हो, वे तुमसे बहुत अप्रसन्न है। सम्भाल कर बाते करना।' जो कुछ हो मैं महात्मा जी के पास पहुँचा। उनके चारो तरफ कराची से आये हुए सिन्धी पुराने सहयोगी स्त्री-पुरुष बैठे थे। मुझको देखते ही उन्होने कुछ व्यग से कहा कि 'तुम खुद घर पर हो और पाकिस्तान मे यह सब हो रहा है।' उनकी बातो से मुझे स्पष्ट अनुमान हुआ कि सिन्धी भाई बहनो ने मेरी अकर्मण्यता बतलायी है, मेरे सम्बन्ध मे कुछ विकार भी पैदा किया। अपनी कठिनाइयो को तो कहा ही होगा जो स्पष्ट थी, पर मेरी बुराई भी साथ-साथ कर ही डाली। मैंने उस समय अपनी सफाई देना अपने आत्मसम्मान के विरुद्ध समझा, विशेषकर जब बहुत से लोग चारो तरफ वहाँ बैठे थे। महात्मा गाधी से मिलने पर साधारण लोगो को इस बडे असमजस का सामना करना पडता था कि उनके पास सदा बहुत से लोग रहते थे। वे स्वय जो चाहते थे कह सकते थे, पर लिहाजवश मेरे ऐसे छोटे लोग उपयुक्त उत्तर नही दे सकते थे। यदि महात्माजी अकेले होते तो मैं अपनी बात अवश्य सुनाता। इतने मे सरदार वल्लभभाई पटेल और उनकी पुत्री मणि बहिन भी आ गयी। पिता पुत्री दोनो ने मुझसे व्यग भरे शब्दो मे बाते की। अवश्य ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ये लोग समझते है कि मैं वहाँ के हिन्दुओ की तरफ उपेक्षा रखता हूँ और मुसलमानो का पक्ष लेकर

पाकिस्तान का समर्थन करता हूँ ।

मैं भी वहाँ बैठ गया । महात्माजी ने सिन्ध की बहुत सी बाते कही । सिन्धियों की प्रशसा करते हुए उन्होने बतलाया कि 'ये लोग तो सारे संसार के नागरिक (सिटिजन्स ग्राफ दि वर्ल्ड) है । चारो तरफ व्यापार के लिये फैले हुए है । अपने प्रदेश से सम्बन्ध बनाये रखते है । नगर के तो सभी हिन्दू चले आवेंगे पर तुम्हे वहाँ के गरीब दो लाख ग्रामीण हिन्दुओ का विशेप रूप से ध्यान रखना चाहिए ।' सिन्ध की चालीस लाख की बस्ती मे करीब १५ लाख हिन्दू थे । ये नगरो मे ही विशेपकर रहते थे । कराची, हैदराबाद लारकाना, सक्कर सभी नगरो मे ये बहुसख्यक थे । स्थिति ऐसी हुई कि ये सभी चले गये । वास्तव मे थारपारकर खण्ड मे दो लाख गामीण हिन्दू रह गये । इनकी मैं कुछ सहायता न कर सका । ये निकल भी नही सके । अन्य लोग तो बचे हुए भारत के विभिन्न भागो मे व्यापार करते हुए बस गये । इसमे उन्होने विशेप साहस और आतरिक योग्यता का परिचय दिया । थारपारकर के हिन्दू वही रह गये । मैं नही कह सकता कि उनकी अब क्या दशा है । उनके जाने पर वहाँ के शासन की तरफ से प्रतिबन्ध भी लग गया । महात्मा गाधी के देश की सभी बातो के विस्तृत ज्ञान पर मुझे आश्चर्य हुआ ।

उस समय पण्डित सुन्दरलाल जी मौजूद थे । ये बडे ही दुखी थे । कहने लगे कि 'क्या अब आपको वहाँ से हिन्दुओ को हटाना पडेगा । ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वे वही बसे रहे ।' महात्मा गाधी और उनके पार्श्ववर्ती लोगो की बातचीत के बाद मैं बहुत क्षुब्ध होकर प्रधान मन्त्री के पास पहुँचा और उनसे कहा कि 'यदि आप मुझे इस पद से मुक्त कर दे तो मैं बडा अनुगृहीत हूँगा । वास्तव मे मैं यह नही चाहता ।' उनके पूछने पर मैंने बतलाया कि 'मुझे महात्माजी और सरदार वल्लभभाई की बाते अच्छी नही लगी । जब वे बिना मुझसे पूछे दूसरो से मेरे विरुद्ध बाते सुनकर मान लेते है, तो स्पष्ट है कि मैं उनका विश्वासपात्र नही हूँ । ऐसी अवस्था मे मेरे लिए पाकिस्तान न जाना ही ठीक होगा ।' इस पर उन्होने

कहा कि 'साधारण उपचार के अनुसार तुम्हे मेरा अर्थात् प्रधान मन्त्री का विश्वासपात्र होना है। किन्ही दूसरो को चाहे हो चाहे न हो, मुझे तुम पर विश्वास है। इस कारण तुम नि सा च जाओ।' मुझे विदेश मन्त्रालय ने विशेष वायुयान दिया, और मैं पाकिस्तान अपने सहायको के छोटे से दल के साथ कराची पहुँचा।

इन घटनाओ से स्पष्ट है कि तथाकथित बडे-बडे पद का काम और जिम्मेदारी कुछ हो या न हो, उसके कारण उस पर बैठे हुए व्यक्ति विरोध, शका, मत्सर, विकार आदि विभिन्न दुर्भावो के अपने साथियो की ही तरफ से शिकार अवश्य हो जाते है। यह अच्छा नही है। काम करने वालो का दिल टूटता है। काम मे हर्ज होता है। वातावरण दूषित होता है और सरकारी गैरसरकारी लोगो मे जो परस्पर का सौहार्द और विश्वास होना चाहिए वह नही होने पाता। खेद तो इसका है कि अपने साथी काम करने वालो से भी सहयोग नही मिलता। भीड मे रहते हुए भी व्यक्ति-विशेष अपने को अकेला ही पाता है।

सार्वजनिक पुरुष और स्थायी कर्मचारी

मेरी इन थोडे दिनो की अनुपस्थिति मे दिल्ली से आई० सी० एस० के एक उच्चाधिकारी उप-उच्चायुक्त (डैप्यूटी हाई कमिशनर) बनाकर भेजे गये। यद्यपि आई० सी० एस० के भारतीय सदस्यो ने अपनी कर्तव्यपरायणता के कारण ब्रिटिश सरकार की हर काम मे सहायता की और अपने देशवासियो को दबाने मे और स्वराज्य के आन्दोलन के विरोध मे सब कुछ किया, पर स्वराज्य के ये विरुद्ध नही थे। स्वराज्य का उनके मन मे यह चित्र था कि इसके आते ही सब अग्रेजो के स्थानो पर हम बैठा दिये जायेगे और वे निकाल दिये जायेगे। उन्हे यह कल्पना नही थी कि राजनीतिक आन्दोलन मे जिन्हे वे कैद भेज रहे थे, और जिनका वे दमन कर रहे थे, वे इन स्थानो पर स्वय बैठेगे। उनके मन मे इनकी तरफ से तिरस्कार की भावना थी। इन्हे वे अपढ, अयोग्य, केवल झण्डा हिलाने वाले और नारे लगाने वाले ही समझते थे। अग्रेजी शासन-परम्परा के अनुसार स्वय हार जाने पर शासक दल विरोधी दल को स्थान देता है। अग्रेज जाते हुए भारत का राज्य काग्रेस दल को और पाकिस्तान का राज्य मुसलिम लीग दल को दे गये।

महात्मा गाधी के अहिसात्मक सिद्धान्त के कारण स्वराज्य शासन ने किसी को अपने पद से हटाया नही। जो अग्रेज चले गये सो चले गये। जो थोडे से अग्रेज रहना चाहते थे वे अपने पदो पर बने रहे। किसी भारतीय कर्मचारी को भी पदच्युत नही किया गया। वे बराबर अपने पदो के नियमो के अनुसार उन्नत भी होते रहे। पर राज्यपालो, राजदूतो आदि राजनीतिक पदो पर सार्वजनिक जीवन से आये लोग भेजे जाने लगे। मन्त्रीगण तो इनमे से आये ही थे। पुराने भारतीय शासन-अधिकारियो को यह अच्छा नही लगा। प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने स्वय मुझसे इसकी शिकायत

की थी। उनके विशेष व्यक्तित्व और अद्भुत कार्यकुशलता को देखकर उनके सम्बन्ध मे तो सम्भवत आई० सी० एस० लोगो ने अपनी राय बदली। पर जहाँ तक मैं समझ सका औरो के बारे मे उनकी राय वही बनी रही। मेरे आई० सी० एस० के सहायक अथवा उप-उच्चायुक्त (डेप्यूटी हाई कमिशनर) ने मुझसे साफ कह दिया कि 'मै आपके सहायक पद पर नही रह सकता। यदि सरकार मुझे उच्चायुक्त बनावेगी तो मैं रहूँगा, नहीं तो नही।' मैंने कहा कि 'मै भी नही रहना चाहता। यदि दिल्ली आपको हाई कमिशनर नियुक्त कर मुझे छुट्टी दे तो मैं सहर्ष चला जाऊँगा।' ये मेरी बात नही मानते थे। स्थिति गम्भीर थी, पर ये अपने मन के अनुसार चलना चाहते थे। मेरे मन मे यह भावना थी कि हिन्दू मुसलिम मनोमालिन्य से जो उत्पात हो रहा है वह शान्त हो। मै मैत्री भाव फैलाने की चिन्ता मे था। इनका कहना था कि 'यदि आप विभाजन के समय दिल्ली मे होते तो देखते कितना उत्पात मुसलिम कर्मचारियो ने मचा रक्खा था। एक-एक कुर्सी का रखना कठिन हो रहा था। वे वहाँ की सब वस्तुओ को ले जाना चाहते थे।' मैं उनके भाव को समझ सकता था, पर मै झगडा बढाना नही चाहता था। डरता था कि इससे दोनो ही तरफ बडा आतक फैलेगा। जो हुआ सो हुआ। अब मामला सम्भालना चाहिए।

दिल्ली स्थित आई० सी० एस० अधिकारी—और इनका ही काफी जोर वहाँ के शासन-यन्त्र मे था—सार्वजनिक क्षेत्र से आये राजदूतो आदि के सम्बन्ध मे सशक थे। जो आई० सी० एस० राजदूतो के सहायक बनाकर भेजे गये थे उन्ही पर अधिक आस्था रखते थे। मेरे तथाकथित सहायक सीधे अपने साथी दिल्ली स्थित आई० सी० एस० वालो से टेलीफोन आदि द्वारा सम्पर्क रखते थे। मैं जो आदेश देता था ये उसका पालन करने को तैयार नही थे। मुझे पता यो लगा कि कुछ भूले भटके काशी के मुसलिम बुनकरो को मैने वापस भारत जाने के लिये अनुमति-पत्र देने का आदेश दिया। बहुत से मुसलमानो ने समझ रखा था कि जैसे ही पाकिस्तान की स्थापना होगी हमारे सब सकट दूर हो जायेगे। वहाँ जाते ही

हम मालोमाल हो जायेगे। पर ससार मे ऐसा नही होता। घर छोडकर यदि कोई बाहर जाता है तो बडा परिश्रम कर नयी जगह पर अपने को जमाना होता है। मै भी नही चाहता था कि काशी की प्रसिद्ध रेशमी साडी आदि की कला का ह्रास हो जो वहाँ के बुनकरो के चले आने से होगा। इधर श्री जिन्ना साहब की बहिन कुमारी फातिमा जिन्ना का फतवा निकल चुका था कि साडी हिन्दू स्त्रियो का पहनावा है, मुसलिम स्त्रियो को इसे नही पहनना चाहिए। वे भारत मे स्वय साडी पहनती थी, पर पाकिस्तान होते ही वे वहाँ पर सलवार या गरारा पहनने लगी। हमारे बुनकर न इधर के रहे न उधर के।

मेरे कार्यालय से इन बुनकरो को अनुमति-पत्र नही दिया गया। दो दिन बाद ये फिर लौटे। मुझे आश्चर्य हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि अनुमति-पत्र नही मिला। डेप्यूटी साहब से जब मैने पूछा तो उन्होने काफी गर्व के साथ बतलाया कि 'भारत सरकार की यह नीति नही है कि वापस जाने के लिये अनुमति-पत्र ऐसे लोगो को दिये जायँ। मैने दिल्ली से पूछ लिया, इस कारण नही दिया।' मुझे बहुत बुरा लगा। मैने कहा कि 'भारत सरकार की नीति मै अधिक जानता हूँ। आपको मेरे आदेश का पालन करना ही होगा।' यह स्पष्ट था कि हम दोनो वहाँ नही रह सकते थे। मैने प्रधान मन्त्री को लिखा कि ऐसी स्थिति मे मुझे अपने स्थान से मुक्त किया जाय। उन्होने खेद प्रकट किया। कहा कि 'जब तुम हाई कमिशनर हो तो तुम्हारा ही आदेश मानना चाहिए।' मामला समाप्त हुआ पर इससे राजनीतिक जीवन से गये हुए उस समय के ऐसे राजनीतिक पदो पर बैठे व्यक्तियो का और उनके उच्च स्थायी कर्मचारियो का जो इनके तथाकथित सहायक बनाकर भेजे जाते थे, परस्पर का सम्बन्ध और भाव समझा जा सकता है। राजनीतिक पुरुपो की कठिनाइयो का भी इससे अनुभव हो सकता है।

स्थिति अब भी बहुत बदली नही है। मन्त्रियो को अपने कार्य मे इसका सामना प्रतिदिन करना पडता है। कुछ दिनो मे बाते सुलझ जायँगी। सबके मान मर्यादा के निश्चित हो जाने पर काम

सुचारु रूप से चलेगा। पर सधिकाल मे दिक्कत तो होगी ही। समझदारी से कार्य करने से ही शासन चक्र समुचित प्रकार से चल सकेगा। थोडे दिन बाद ऐसे समय जब मैं पूर्व बगाल मे कार्यवश गया था, ये सज्जन, दिल्ली से तय कर, वापस चले गये। जब मैं लौटा तो वे नही थे। दूसरे अधिकारी भेजे गये। दिल्ली के विदेश मन्त्रालय के अधीन राजदूत कार्य करते थे। धीरे-धीरे सार्वजनिक लोग राजदूत के पदो पर कम और आई० सी० एस० के ही लोग अधिक जाने लगे। इन लोगो ने केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल पर सम्भवत यह प्रभाव डाला कि सार्वजनिक जन ऐसे काम को ठीक तरह से नही कर पाते। इधर 'फारेन सर्विस' का भी सघटन हुआ। थोडे दिनो मे इसी के सदस्यगण अधिक सख्या मे राजदूत होगे। मुझे स्वय इस स्थिति पर दु ख है। ऐसे पदो पर राजनीतिक अथवा अन्य गैर-सरकारी क्षेत्र से आये लोग सम्भवत अधिक स्वतन्त्रता और उत्तमता से काम कर सकते हैं। स्थायी कर्मचारियो की कार्य प्रणाली अनिवार्य रूप से सीमित और निर्धारित क्रम से ही चलती है। विस्तृत दृष्टि से उन्हे काम करना साधारणत सम्भव नही होता।

सिन्ध से महाप्रस्थान का आरम्भ

जब प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू और मेरे बीच मे यह अन्तिम रूप से निश्चित हुआ कि मुझे पाकिस्तान के प्रथम उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) का पद उठाना ही पड़ेगा, मैंने सितम्बर १९४७ के मध्य मे कराची मे अपने को स्थापित किया। पाकिस्तान शासन की तरफ से मेरे लिये एक अधूरा बना हुआ मकान निर्धारित किया गया। शहर से यह कई मील दूर था और ड्रग रोड हवाई अड्डे के रास्ते मे पड़ता था। इसे किसी गुजराती कुटुम्ब ने अपने लिए बनवाना आरम्भ किया था। पाकिस्तान शासन ने इसका भारतीय उच्चायुक्त कार्यालय के लिये अधिग्रहण (रेक्विजिशन) कर लिया। इस प्रकार की कार्रवाई से मुझे दु ख हुआ पर मैं विवश था। जब मकान मुझे मिला तो निवासस्थान के योग्य नही था।

होटल छोड़ने के बाद मैं अपने पजाबी मित्र श्री निरजन प्रसाद के मकान पर चला गया। इन्होने बड़े उच्च स्तर से मेरा आतिथ्य किया। मुझको बड़ा असमजस लगा पर ये मेरी बात मानने को नही तैयार हुए। मुझे दूसरी जगह जाने नही दिया। अपने दल सहित मैं कई महीने इनका अतिथि रहा। जो मकान रहने के लिये मुझे मिला था उसके तैयार होने मे बड़ी देर लग रही थी। मैंने अपना कार्यालय नीचे की मजिल मे स्थापित किया। मकान का नाम 'दामोदर महल' था। पीछे पाकिस्तानियो ने इसका नाम 'बालिका महल' कर दिया। यह मेरा सयुक्त दफ्तर और निवासस्थान रहा। यह दो मजिला मकान है। मैं इस प्रतीक्षा मे था कि ऊपर की मजिल तैयार हो जाय तो उसे अपने रहने के योग्य बना लूं।

मेरे मित्र प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खॉ जानते थे कि मैं विधुर हूँ। मेरी स्त्री का देहावसान हुए बहुत वर्ष हो गये थे। वह यह भी जानते थे कि मेरा जीवन बड़ा सादा है। सम्भवत

उन्हे यह विश्वास था कि इस छोटे से मकान मे अपने दफ्तर और गृहस्थी दोनो का ही काम मैं चला लूंगा। मुझे स्वय भी कोई चिन्ता नही थी और अपने मित्र श्री निरजन प्रसाद जी के आतिथ्य का वहुत दिनो तक उपभोग कर मैं इस मकान मे आ गया। अपने सीमित साधनो के अनुरूप मैंने उसे साज कर यथासम्भव अपने रहने योग्य उसे वना लिया। वास्तव मे मुझे मकान आदि साजने का कोई अनुभव नही था।

यह जानकर पाठको को कौतूहल होगा कि हमारे पडोस मे सऊदी अरेविया के राजदूत को चार-चार वडे-वडे मकान दिये गये थे। मैंने सुना था कि इनकी तीन स्त्रियाँ हैं और चौथा मकान सम्भावित चौथी के लिए खाली रखा गया था। मैं ठीक नही कह सकता कि क्या वात थी। इन राजदूत की और मेरी अच्छी मैत्री थी। हम एक दूसरे के पास अक्सर जाया और विचारो का विनिमय किया करते थे। इनको इस वात की वडी फिकर थी कि मैं कुछ ऐसा प्रवन्ध कर दूं कि जो भारतीय मुसलमान हज के लिए सऊदी अरेविया जाएँ वे ठीक प्रकार से यात्री-कर दें। वे अपने को इससे वचा न सके। यह कर काफी वडा था। प्रत्येक यात्री को ९८० रु० देना पडता था।

जव मैं सितम्वर १९४७ मे कराची इस विचार से पहुँचा कि अव मुझे यहाँ पर उच्चायुक्त वन कर रहना पडेगा, तो मैंने देखा कि मकान के मालिक अपनी स्त्री और वच्चो के साथ वहाँ आ गये हैं, और आशा करते हैं कि मकान पर वे अधिकार कर सकेंगे। पर वे ऐसा कर नही सकते थे। मैं उनसे पूरी सहानुभूति रखता था पर मकान उन्हे नही मिल सकता था क्योकि राजाज्ञा से वह ले लिया गया था। शीघ्र ही ये लोग भी उसी प्रकार भारत चले गये जैसे सिन्ध के सभी अचलो से हिन्दू चले जा रहे थे। केवल कराची के ही नही पर सिन्ध के सभी नगरो के हिन्दू उखड गये थे, और विभाजन के वाद जो भारत वच गया था उसमे वसने के लिये चले आ रहे थे। मैं पजाव का अपना अनुभव वतला चुका हूँ जहाँ कि अगस्त १९४७ के अन्त और सितम्वर के आरम्भ मे मैंने करोडो

की सख्या मे नर नारियो को इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते देखा था।

अब मेरा केन्द्र स्थान कराची हुआ और ऐसे ही डेढ साल तक बना रहा जब तक कि मै इस पद पर रहा। उस समय भारत का शासन पुराने अनुभवी आई० सी० एस० अफसरो के नेतृत्व मे चलता था। उनको ऐसे सार्वजनिक पुरुपो मे विश्वास नही था जिन्हे प्रधान मन्त्री उच्चायुक्त अथवा राजदूत बना कर विदेशो मे भेजते थे। कम से कम मुझमे तो उन्हे जरा भी विश्वास नही था। उच्चायुक्त होने के नाते अवश्य ही लाहौर और ढाका मे स्थित सहायक-उच्चायुक्त को मेरे नियन्त्रण मे रखना चाहिए था, पर ऐसा किया नही गया। मैने इस सम्बन्ध मे दिल्ली के सचिवालय से पत्र व्यवहार किया और कहा कि लाहौर और ढाका के सहायक-उच्चायुक्त के लिये आवश्यक होना चाहिए कि केन्द्र के शासन को जो विवरण वह भेजे उसकी नकल मुझे भी दे जिससे कि मै वहाँ की स्थिति से परिचित रहूँ। मेरी प्रार्थना अस्वीकृत करते हुए मुझसे कहा गया कि उचित होगा कि 'तुम अपना कार्यक्षेत्र सिन्ध तक ही सीमित समझो। केन्द्र शासन स्वय ही पजाब और पूर्वी बगाल के सहायक-उच्चायुक्तो से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखेगा।' पीछे मै कलकत्ता तक ही जाता था। पूर्वी बगाल से आये हुए शरणार्थियो की दशा का अनुसन्धान कर कराची वापस आ जाता था।

इस स्थिति का कुछ ही अर्थ हो सकता है। मैं स्वय ही उसमे सन्तुष्ट नही था। पीछे जब मैं मद्रास मे था तब मेरे हृदय का आप्यायन उस समय के विदेश मन्त्रालय के सचिव श्री सुविमल दत्त के पत्र से हुआ जिसमे उन्होने लिखा था कि 'यह बडे भाग्य की बात है कि कराची मे उस कठिन समय मे आप उच्चायुक्त रहे। यदि आप वहाँ न रहे होते तो शासन समझ भी न पाता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए।' मुझे उच्चायुक्त की हैसियत से इसी मन्त्रालय से पत्र व्यवहार करना पडता था। मै नही कह सकता कि जो प्रशसात्मक शब्द मेरे लिए कहे गये उनके योग्य मै था या नही। पर मुझे कुछ सन्तोप अवश्य हुआ

क्योकि उस समय के घाव की कुछ पूर्ति हुई जब देखने को उच्चायुक्त होते हुए सिन्ध मे भी केवल सयुक्त सहायक-उच्चायुक्त ही रहा। जिस प्रकार से लाहौर और ढाका मे आई० सी० एस० अफसर सहायक-उच्चायुक्त थे वैसे ही कराची मे भी एक आई० सी० एस० अफसर सयुक्त उच्चायुक्त बराबर रखे गये थे जिन्हे मुझसे अधिक वेतन मिलता था। मुझे इसकी परवाह नही थी, पर मुझे यह अवश्य बुरा लगता था कि उसके कारण वे अपने को ज्यादा बडा मानें क्योकि इस समय तो वेतन से ही पद का गौरव समझा जाता है यद्यपि मेरी समझ मे ऐसा नही होना चाहिए।

मुझे थोडे ही दिन पीछे एक के बाद एक तीन महाप्रस्थानो का प्रबन्ध करना पडा। मेरे लिए यह कहना उचित होगा कि सिन्धी हिन्दू और सिन्धी मुसलमानो मे सदा से बडा सौहार्द रहा है। विभाजन के बाद सिन्ध के प्रथम राज्यपाल सर गुलाम हुसैन हिदायतुल्ला और प्रथम मुख्य मन्त्री जनाब खुरो के अधिकतर मित्र हिन्दू ही थे। मुझे आरम्भ मे यह पूरी आशा थी कि वहाँ से हिन्दू लोग नही जायँगे, और सब लोग अपने स्थान पर बने रहेंगे। पर ऐसा हुआ नहीं। पहले पहल तो सिन्ध शासन के हिन्दू कर्मचारी चले। उन्हे यह अधिकार दे दिया गया था कि चाहे वे भारत मे रहे चाहे पाकिस्तान मे। मैं नही कह सकता कि जिन लोगो ने ऐसा निर्णय किया उन्होने यह भी सोचा था या नही कि सरकारी कर्मचारी केवल प्रबन्ध विभाग या न्याय विभाग के बडे-बडे अफसर ही नही होते। निम्नतम स्तर के कार्यकर्त्ता भी इनमे ही होते हैं जैसे दफ्तर के चपरासी या रेल के स्टेशनो के भगी भी सरकारी कर्मचारी का ही पद रखते हैं।

मेरे दफ्तर मे दिन प्रति दिन हर श्रेणी के ऐसे लोग आने लगे जो चाहते थे कि उच्चायुक्तालय से प्रबन्ध कर दिया जाय कि वे वहाँ से जा सकें। यह ऐसा दयनीय दृश्य था जिसके लिये मैं तैयार नही था। मेरा हृदय बडा ही दुखित हो गया। पर मैं विवश था। रेल की यात्रा भयावह थी। जब रेल कराची से लाहौर जाते हुए बहावलपुर राज्य से गुजरती थी तब उसमे बहुत कम हिन्दू जीवित

रह जाते थे। समुद्र का ही रास्ता सबसे सुरक्षित मार्ग था। इसमे मेरे मित्र श्री नवीन खाण्डवाला के द्वारा सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी से मुझे बडी मदद मिली। हजारो, लाखो नर-नारी वहाँ से सुरक्षित ग्रवस्था मे भारत पहुँचाये जा सके। इन सब कामो के ग्रतिरिक्त प्रति दिन दफ्तर का काम भी ग्रधिक रहता था। दिल्ली से निरन्तर सम्पर्क स्थापित रखना पडता था, ग्रौर पाकिस्तान के केन्द्रीय शासन से मेरा पत्रव्यवहार लगातार बना रहा। साथ ही पुराने सम्पर्कों के कारण व्यक्तिगत ग्रौर ग्रर्ध-सरकारी पत्रव्यवहार भी करते रहना पडता था।

मन्दिरो के भ्रष्ट होने पर हिन्दुग्रो को वडी चोट पहुँचती थी। एक दिन बहुत ही सवेरे एक मद्रासी सज्जन मेरे दफ्तर मे दौडे ग्राये ग्रौर उन्होने कहा कि रात मे पास के ही एक मन्दिर को नष्टभ्रष्ट कर दिया गया जहाँ वे प्रतिदिन प्रात काल पूजा करने जाया करते थे। उन्होने मुझसे कहा कि 'ग्राप चल कर उसे देखिए'। मै वहाँ गया। ग्रच्छा सुन्दर मन्दिर था जिसके ग्रन्तर्गत बहुत से छोटे-छोटे मन्दिरो मे विभिन्न देवी-देवताग्रो की मूर्तियाँ थी। ये सब तोड डाली गयी थी। चारो तरफ टूटे टुकडे पडे थे। इस दृश्य को देखकर मै दुखी मन से बाहर खडा था। इतने मे एक वयोवृद्ध मुसलमान व्यक्ति उधर से गुजरे। वे सिन्धी थे। या तो उन्होने मुझे पहचाना या यह देखकर कि मन्दिर के टूटने पर कोई हिन्दू दु ख कर रहा है, उन्होने कहा कि 'ऐसा मत समझिएगा कि इस कुकर्म मे हम सिन्धियो का हाथ है। यह सब उत्पात पजाबी लोग कर रहे है जो हमारे ऊपर राज्य करने ग्राये है।' मै कर ही क्या सकता था। दुखी मन से लौट ग्राया ग्रौर पाकिस्तान शासन के पास सूचना भेज दी जिस पर कुछ भी कोई ध्यान नही दिया गया।

कुछ दिन पीछे मेरे पास यह शिकायत ग्रायी कि ड्रग रोड हवाई ग्रड्डे के रास्ते मे एक पहाडी के ऊपर जो मन्दिर था वह नष्टभ्रष्ट कर दिया गया। डालमिया वश के सीमेट के कारखाने के सामने वहाँ के कर्मचारियो ने इस मन्दिर को स्थापित किया था। मैं वहाँ गया। सभी मूर्तियाँ बुरी तरह से तोड दी गयी थी। शासन

ने पहरे के लिये मेरे यहाँ सगीनधारी सिपाहियो का गारद दिया था। उनमे से एक मेरे साथ सदा ही मोटर मे चलते थे। उन्हे भी यह दृश्य देखकर बडा दु ख हुआ। उसी दिन सायकाल राजभवन मे चाय पार्टी थी। जिन्ना साहब आतिथेय थे। उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था। वे अपने भवन के घास के बडे मैदान मे एक तरफ सोफा पर अकेले बैठे हुए थे। चारो तरफ चाय और जलपान के पदार्थ रखे हुए थे। अतिथियो से आशा की जाती थी कि वे स्वय ही इन्हे ले कर खा-पी लेंगे। जिन्ना साहब के पास कोई नही जा सकता था। वे बहुत अशक्त थे। वे किसी से मुलाकात नही कर सकते थे। जब एक वयोवृद्ध मुसलिम सज्जन जिन्हे मैं दिल्ली मे केन्द्रीय विधान सभा के साथी सदस्य के नाते जानता था, बडे जोश मे उनका अभिवादन करने उनकी तरफ बढे, तो वे रोक दिये गये। उनसे कहा गया कि उधर मत जाइए।

उसी पार्टी मे मुझे दूसरे मुसलमान मित्र भी मिले जिन्हे मैं पहले मे जानता था। मैंने उन्हे मन्दिर के नष्ट होने की कथा सुनायी और आशा प्रकट की कि ऐसे अनाचार को रोकने का पूरा प्रबन्ध किया जाय जिससे कि कोई साम्प्रदायिक मनोमालिन्य न फैले। मैं वहाँ पर शासन और सचिवालय के सभी बडे-छोटे सदस्यो को पहले से जानता था इस कारण उनसे स्पष्ट रूप से बात करता रहा। यह सज्जन कुछ जोश मे बोले—'यह असम्भव है क्योकि इसलाम ने मन्दिरो को तोडना मना किया है।' मैंने कहा कि 'इसलाम धर्म का ऐसा आदेश हो सकता है पर टूटे हुए मन्दिर को तो मैं देखकर आ रहा हूँ और यदि आप चाहे तो वहाँ स्वय चलकर देख सकते हैं।'

इस पर उन्होने कहा कि 'ऐसा होना असम्भव है क्योकि कुरान के उपदेश के यह विरुद्ध है।' वे इस बात को मानने को तैयार ही नही हो रहे थे कि जो कुछ मैंने उनसे कहा मैंने स्वय देखा था। मैं तो उनके शब्दो से स्तम्भित रह गया। मैं स्पष्ट रूप से देख रहा था कि वे लोग ऐसी कोई बात मानने को तैयार नही हैं जो कि उनके मन के अनुकूल न हो। आँख देखी भी ऐसी बात यदि

उनसे कोई कहता तो वे उसे अस्वीकृत कर देते थे। मेरे लिये यहाँ पर यह कह देना उचित होगा कि ठीक ऐसी ही शिकायतें भारत से पाकिस्तान आती थी। मुझे यह विचार कर आश्चर्य होता था कि यदि अभियोग पत्रो मे 'पाकिस्तान' शब्द की जगह 'भारत' और 'भारत' की जगह 'पाकिस्तान' लिख दिया जाय तो सिद्ध हो जाय कि जो कुछ शिकायत एक तरफ से की जाती थी ठीक वही दूसरी तरफ से भी होती थी।

सिन्ध में भारतीय मुसलमान

देश के दुखद विभाजन के वाद और पाकिस्तान की स्थापना होने पर जो बहुत से मुसलमान वचे हुए भारत के विभिन्न अंचलो मे रहते थे, वह यह अभिलाषा करने लगे कि हम भी इस नवनिर्मित स्वतन्त्र राज्य मे चले जायँ। उनकी ऐसी भावना थी कि पाकिस्तान पूर्ण रूप से मुसलिम राष्ट्र होगा क्योकि मुसलमानो के लिये ही एक नया 'देश' पुराने सयुक्त देश को काट कर बनाया गया था। उनका विचार था कि वे इस नये राज्य मे सुखी रहेगे और जो उनके धार्मिक और साम्प्रदायिक विचार है उनके अनुसार वे जीवन व्यतीत कर सकेंगे। उनको कुछ ऐसा ख्याल हुआ कि जैसे ही वे पाकिस्तान पहुँचेंगे वैसे ही उनमे जो दरिद्र थे वे धनी हो जायेंगे, और जो पहले से सम्पन्न थे वह और भी ऊँचा पद और गौरव प्राप्त कर सकेंगे। यह तो स्पष्ट ही था कि सयुक्त भारत के सब मुसलमान पाकिस्तान मे उपयुक्त स्थान और जीविकोपार्जन के साधन नही पा सकते थे। पर यह भी सत्य है कि उनमे से अधिकतर का यह विचार अवश्य था कि यदि उनके लिये वहाँ जाना सम्भव हो तो वे चले जायँ।

यह विचार करना चाहिए कि वास्तव में कैसे लोग गये। पहले तो वे लोग गये जो राजनीति मे विशिष्ट स्थान रखते थे, और मुसलिम लीग के नेता थे। उनका पाकिस्तान जाना स्वाभाविक था क्योकि अंग्रेज शासक यहाँ से जाने के पहले उन्ही के हाथो मे नये राज्य के प्रवन्ध का भार सुपुर्द कर गये थे। मुसलिम उच्च सरकारी अधिकारियो का भी वहाँ चला जाना ठीक ही था क्योकि उन्हे वहाँ की राजकीय व्यवस्था करनी थी। उसके अतिरिक्त व्यापारी और उद्योगपति थे जिन्होने ऐसा विचार किया कि नये राज्य मे वे अपना कारोवार वढा सकेंगे और अधिक सफलता भी

प्राप्त कर सकेंगे। राजनीतिज्ञ और कर्मचारीगण तो भारत के उत्तरीय खण्ड के थे। पर व्यापारी और उद्योगपति बम्बई के थे। इन सब के अतिरिक्त सामान्य मुसलिमगण भी थे जो भी पृथक् मुसलिम राज्य की कामना रखते थे और अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति के लिये पाकिस्तान जाने लगे।

प्रवीण राजनीतिकगण तो पाकिस्तान मे सर्वोच्च अधिकारी हो गये। महा-राज्यपाल (गवर्नर-जनरल), राज्यपाल, मन्त्री और राजदूत आदि के काम इन्होने सम्भाले। जो सरकारी कर्मचारी थे वे वैसे पदो पर आसीन हुए जैसे कि सयुक्त भारत मे छोडकर वे पाकिस्तान मे गये थे। बम्बई से बहुत से ऐसे व्यापारी गये जो मुसलमानो के अन्तर्गत खोजा और बोरा समुदायो के थे। इन्होने अपने पुरुपार्थ से वहाँ पर अपने को स्थापित किया। बम्बई और भारत के अन्य प्रदेशो से वे अपना सम्पर्क बनाये रहे। उनके रिश्तेदार दोनो तरफ रहे। उनमे वह साम्प्रदायिक कटुता नही थी जो राजनीतिज्ञो और सरकारी कर्मचारियो मे थी। उनकी मातृभापा गुजराती है। वे उसी भाषा मे अपना सब कार्य करते रहे। वे सम्पन्न रहे। वे हिन्दू व्यापारियो से अपना पुराना सम्बन्ध बनाये रहे। उन्हे अपने व्यापार से ही मतलब था। उन्हे राजनीति मे कोई रुचि नही थी। उनकी धार्मिक भावनाये, सम्पत्ति सम्बन्धी उनके कानून आदि भी बहुत कुछ हिन्दुओ की प्रथाओ से मिलते है। उनमे से बहुत थोडे पाकिस्तान गये। आज भी बम्बई ऐसे नगर के सामाजिक और व्यापारिक मण्डलो मे उनका बहुत ऊँचा और महत्व का स्थान है। वास्तव मे पाकिस्तान की स्थापना से न उन्हे अधिक लाभ हुआ और न किसी प्रकार की हानि।

पर सामान्य नर-नारियो की दशा पर भी विचार करना उचित और आवश्यक है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश मे बहुत से मुसलिम बुनकर है। जैसा जगत् प्रसिद्ध है, दस्तकारी और अन्य प्रकार के शारीरिक श्रम की कलाओ मे मुसलमान प्रवीण होते है। हमारे देश मे जन्म जातियाँ बहुत शीघ्रता से उत्पन्न हो जाती है। जो

कोई किसी विशेष प्रकार के कार्य मे लगे रहते है, वे दूसरे प्रकार के कार्यो मे हस्तक्षेप नही करते। उत्तर प्रदेश मे प्राय मुसलमान ही बुनकर होते है। महाराष्ट्र और मद्रास मे हिन्दू बुनकर भी है। पर उत्तर प्रदेश मे इनकी सख्या नही के बराबर है। काशी ऐसी नगरी यदि एक तरफ प्राचीन आर्य (हिन्दू) विद्या, धर्म और परम्परा का केन्द्र रही है तो दूसरी तरफ वह अपने किनखाब और हाथ से बने हुए अन्य प्रकार के सुन्दर वस्त्रो के लिये भी बडी प्रसिद्ध रही है। यदि आज काशी के सब मुसलमान कारीगर स्थायी रूप से वहाँ से चले जाये, तो इसका गौरव और वैभव सब लुप्त हो जायगा। इसी प्रकार से आजमगढ जिले के मऊनाथ भजन और फैजाबाद जिले के टाडा मे मुसलमान बुनकर है। यदि उनके व्यवसाय से उन्हे जीविकोपार्जन के साधन मिलते है तो साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि उनकी कला के कारण जन साधारण को आवश्यक वस्त्र भी मिलते है। जब कभी ऐसे बुनकर प्रारम्भिक जोश मे कराची पहुँचते थे और पीछे मुझसे मिलते थे तो उनकी करुण कहानी सुनकर मुझे बहुत दु ख होता था। काशी से भी बहुत से ऐसे लोग पाकिस्तान गये पर पीछे उन्हे पता लगा कि उनके लिये वहाँ कोई स्थान नही है।

पाकिस्तान मे ऐसे साधारण मुसलमानो के लिये जो भारत से गये थे, न स्थान था और न रोजगार। उनके लिये यह स्वाभाविक था कि वे वापस आना चाहे। मुझे स्वय उनके प्रति कोई विकार नही था। मेरी तो उनके साथ सहानुभूति थी। मुझे दु ख था कि उनके नेताओ ने उन्हे पथभ्रष्ट किया। नेतागण ने स्वय किसी प्रकार का कष्ट नही उठाया, पर साधारण जन को उनके कारण अत्यधिक सकट का सामना करना पडा। जितनो को मैं भेज सकता था मैंने वापस भेजा। मेरे लिये यह कहना उचित होगा कि इस बात को देखकर मुझे बहुत ही दु ख हुआ कि पाकिस्तान के शासन ने उन मुसलमानो के साथ कोई सहानुभूति नही दर्शायी जो भारत से चले आ रहे थे। वास्तव मे उन्हे यह अधिकार था कि वे पाकिस्तान के शासन मे पूर्ण सहायता प्राप्त करते। पाकिस्तान के

उच्च कोटि के नेतागण सम्भवत यह चाहते थे कि पाकिस्तान से सब हिन्दू चले जायँ और जो भारतीय मुसलमान आये है वे भी चले जायँ। इन्हे इसी मे सतोष था कि हमे शासन करने के लिये एक देश मिल गया है।

नेतागण उन्ही मुसलमानो के दु खो के प्रति उदासीन थे जिनके लिये और जिनकी मदद से पाकिस्तान की स्थापना हुई। भारत से आये हुए मुसलमान नर-नारी कराची के स्थानीय विद्यालयो और अन्य सस्थाओ के भवनो मे भर गये थे। मै उन्हे बीच-बीच मे देखने जाता था। वैधानिक दृष्टि से मै उनके लिये अधिक उत्तरदायी था क्योकि वे भारतीय थे। मेरा उत्तरदायित्व पाकिस्तान के हिन्दुओ के लिये नही था क्योकि उनके लिये सारी जिम्मेदारी पाकिस्तान के शासको की थी। पर जैसी कि उस समय की अवस्था थी, उसमे वस्तुस्थिति बिल्कुल उलटी हो गयी थी। वहाँ के हिन्दुओ के योगक्षेम का भार भारतीय उच्चायुक्तालय पर आ गया और पाकिस्तान के शासन की जिम्मेदारी उन मुसलमानो के लिये हो गयी जो भारत से चले आ रहे थे। मै नही कह सकता कि कभी भी किसी देश के दूसरे देश मे भेजे हुए राजदूत की वास्तविक स्थिति वैसी रही हो या हो सकती हो जैसी की मेरी उस समय थी।

जब मै उन दिनो का और अपने अनुभवो का स्मरण करता हूँ तो उनकी वास्तविकता पर थोडी हँसी आती है। पर दशा ऐसी दु खद और गम्भीर थी कि हँसने की कोई गुजाइश नही हो सकती थी। काम इतना अधिक था कि शान्ति के साथ बैठ कर विचार करने का भी समय नही मिलता था। भारत से आये हुए मुसलमानो की कठिनाइयो को सुनने वाला कोई नही था। अधिकारी यही चाहते थे कि वे सब वापस चले जायँ। वे यह चाहते थे कि पाकिस्तान से सब हिन्दू भी चले जायँ। वे एकान्त मे राज्य मात्र करना चाहते थे। वास्तव मे भारत के शासन ने हर प्रकार का प्रयत्न कर उन हिन्दुओ को आश्रय दिया जो पाकिस्तान से आये थे। इतने पर भी बहुत शिकायत की गयी और की जाती है कि जितनी उनकी फिकर की जानी चाहिए थी उतनी नही की गयी। वे स्वय

बड़े रोष मे भरे रहे।

पूर्वी बगाल से आये शरणार्थियो की विशेषकर ऐसी दशा रही। जो मुसलमान पूर्वी पजाब से गये वे अवश्य हिन्दुओ के प्रति बडे रोष मे भरे हुए थे क्योकि उन्हे बहुत कष्ट सहना पड़ा था। पर जो मुसलमान देश के अन्य भागो मे पाकिस्तान गये उनमे ऐसी दुर्भावना नही थी। जहाँ तक मुझे मालूम है जो मुसलमान पश्चिमी बगाल से पूर्वी बगाल मे गये उन्हे भी हिन्दुओ के प्रति कोई विकार नही था। जो मुसलिम शरणार्थी सिन्ध आये उन्होने यह कठिन समस्या उपस्थित की कि वे शहरो मे ही बसना चाहते थे। कराची नगरी के लिये स्थिति विशेषकर कष्टदायी हो गयी। उस समय के सिन्ध के मुख्य मन्त्री जनाब खुरो साहब ने मुझसे कहा था कि 'बहुत से गाँव और छोटे कस्बे खाली पडे हुए हैं क्योकि वहाँ से सब हिन्दू चले गये। जो मुसलमान भारत से आये हैं वे वहाँ नही जाना चाहते। वे कराची मे ही रहना चाहते हैं। कराची सबको कैसे बसा सकती है?' नगर की आबादी पहले ६ लाख की थी। मेरे समय मे १५ लाख की हो गयी। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है आज भी शरणार्थियो की दशा सन्तोषप्रद नही है।

देश के विभाजन ने ऐसा अद्भुत दृश्य उपस्थित किया जैसा कि कभी भी अपने पहले इतिहास मे नही देखा गया था। इसके कारण करोडो की सख्या मे स्त्री-पुरुषो ने एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये महाप्रस्थान किया। हमारे देश मे अनेक आक्रमण हुए है, कितनी ही क्रान्तियाँ भी हुई, बहुत से राज्य एक शासक के हाथ से दूसरे शासक के हाथ मे गये, पर कभी भी बडी-बडी सख्या मे सारी की सारी आबादी एक जगह से दूसरी जगह नही चली गयी। महामारी, दुर्भिक्ष और नदियो की बाढ के कारण अथवा अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति के लिये कुछ लोग एक स्थान से दूसरे स्थान गये होगे, पर शासको के परिवर्तन मात्र के कारण सारा का सारा जनसमूह अपने घरो को छोड कर दूसरी जगह नही गया। मेरा कुटुम्ब काशी मे १५ पीढियो से और प्राय ३०० वर्षो से बसा हुआ है। इस बीच मे नगर ने कैसे-कैसे युद्धो और कैसी-कैसी

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान

सार्वजनिक विषयों मे जो लोग रुचि रखते है उनको इस बात पर आश्चर्य हुआ होगा कि देश के विभाजन के बाद और उसकी दोनो दाहिनी और बायीं सीमाओं पर स्वतन्त्र पाकिस्तान राज्य की स्थापना होने पर, पाकिस्तान के अंग्रेजी पत्रो मे भी बचे हुए भारत को 'भारत' के ही नाम से निर्दिष्ट किया जाता था। उसे 'इण्डिया' नही कहते थे यद्यपि पुरानी परम्परा के अनुसार हम सब अपने देश को अंग्रेजी मे 'इण्डिया' ही कहते है। हमारे संविधान मे देश का वर्णन 'इण्डिया अर्थात् भारत' ऐसे वाक्य मे किया गया है। यद्यपि हम अंग्रेजी मे अपने देश को 'इण्डिया' के नाम से जानते है और संसार मे इसी नाम से यह देश प्रसिद्ध रहा है, तथापि देशी भाषा-भाषी लेखक और वक्ता उसे 'भारत' ही के नाम से जानते और पुकारते है। 'इण्डिया' अंग्रेजी शब्द है जिसका हमारी भाषा मे वास्तविक पर्याय 'हिन्द' शब्द से हो सकता है। पर हिन्द शब्द का प्रयोग हम 'जय-हिन्द' के नारे मे ही करते रहे। जहाँ तक मुझे मालूम है, देश को 'हिन्द' के नाम से कभी नही जाना गया यद्यपि यह नाम इसके लिये उपयुक्त होता। हमारे कितने ही लोगो को बडा आश्चर्य और कुतूहल हुआ कि पाकिस्तान के अंग्रेजी अखबार भी भारत को 'इण्डिया' न पुकार कर, 'भारत' ही पुकारते थे, और 'भारतीय मन्त्रियों', 'भारतीय राजनीतिज्ञों' और 'भारतीय जनता' का निर्देश करते थे।

यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक राष्ट्रपति अय्यूब खा ने समाचारपत्रो को आदेश नही दिया कि 'इण्डिया अर्थात् भारत' को इण्डिया के नाम से पुकारा जाय न कि 'भारत'। जहाँ तक मुझे याद पडता है यह मामला संसद् के सामने भी आया था, और प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने वास्तविक स्थिति को

बतलाया था और उस पर आश्चर्य प्रकट किया था। यद्यपि बात पुरानी है पर पाठको को सम्भवत यह जानने मे रस हो कि इस सब के भीतर की क्या बात है। पाकिस्तान के तथाकथित सस्थापक और उसके प्रथम गवर्नर जनरल (महाराज्यपाल) जनाब मुहम्मद अली जिन्ना साहब को शब्दो के प्रयोग के सम्बन्ध मे बडा आग्रह रहता था। उनको यह भी पूरा विश्वास था कि जो कुछ मैं कहता या करता हूँ वही ठीक है। उन्होने अपने मन मे यह धारणा कर रखी थी कि जो कुछ मैं कहूँ वह तुरन्त होना चाहिए। जिस समय जो भी उनका मत हो उससे यदि कोई भी असम्मति प्रकट करे तो वे क्रुद्ध हो जाते थे। जब एक ही मातृभूमि को काट कर पाकिस्तान नाम का नया स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ तो उनकी यह इच्छा थी कि जो भाग बच गया है उसे 'हिन्दुस्तान' कहा जाय अर्थात् उसे हिन्दुओ का स्थान माना जाना चाहिए। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, पाकिस्तान नाम के राज्य की स्थापना का प्रस्ताव कुछ दिनो से चल रहा था। यह नाम उनको रुचिकर हुआ होगा क्योकि 'पाक' शब्द का अर्थ 'पवित्र' है, और उसके अक्षरो से उन भू-भागो का निर्देश किया जाता हे जिनमे से अधिकतर नये राज्य मे सम्मिलित होने वाले थे।

जैसा कि सब को विदित है, हमारे पूर्वज 'हिन्दू' शब्द को नही जानते थे। न देश का नाम हिन्दू था, न धर्म का। न हमारे धार्मिक ग्रथो मे, न दर्शन शास्त्रो मे और न काव्यो मे यह पाया जाता है। यह नाम सिन्धु अर्थात् इडस नदी के पूर्वी किनारे पर रहने वालो को पहले यूनानियो ने दिया, फिर तुर्को ने इसका समर्थन किया। यदि यह ठीक है तो ऐतिहासिक कारणो से हिन्दुस्तान देश की पश्चिमी सीमा आज की सीमा से आगे चली जाती है। जैसा हम जानते है अपने राजनीतिक जीवन के अन्तिम चरण मे जिन्ना साहब ने हिन्दुओ और मुसलमानो को पृथक्-पृथक् राष्ट्र माना था। एक बार तो उन्होने यहाँ तक कहा था कि 'उन दोनो मे किसी प्रकार की समानता नही है। उनकी कला और वास्तुशास्त्र, उनकी भाषा और साहित्य, उनकी प्रकृति और आकाक्षा सब अलग-अलग है।'

कुछ लोगो को शायद यह स्मरण हो कि जब किसी आयोग के सम्मुख जिन्ना साहब साक्षी दे रहे थे और उनसे राजनीतिक स्थिति पर प्रश्न पूछे जा रहे थे, तब किसी अंग्रेज सदस्य ने उनसे पूछा कि 'जब हिन्दू और मुसलमान हर सडक और हर गॉव मे अगल-बगल रहते हैं तो यह कैसे सम्भव है कि वे भिन्न-भिन्न राष्ट्र के हैं।' जिन्ना साहब की हाजिर जवाबी प्रसिद्ध थी। वे कुछ न कुछ उत्तर फौरन दे सकते थे चाहे उसके अर्थ का परिणाम कुछ ही क्यो न हो। उन्होने कहा कि 'हिन्दू और मुसलमान दो पृथक्-पृथक् राष्ट्र हैं, और हर गॉव और हर गली मे ये दो राष्ट्र एक दूसरे का मुकाबला करते हुए खडे है।' जब पाकिस्तान की स्थापना हो गयी, और वे उसके प्रथम महा राज्यपाल हुए तो प्रतीत होता है कि उन्होने अपनी कुछ राय बदली।

कराची के वकीलो ने उनके सत्कार मे सभा की जिसमे मैं मौजूद था। अपने भाषण मे उन्होने कहा कि 'जब अब देश का विभाजन हो गया तो जितने गैर-मुसलिम लोग पाकिस्तान मे रहते है उन्हे अपने को पाकिस्तानी समझना चाहिए। जाति और धर्म का कोई भेद नही मानना चाहिए।' मै नही कह सकता कि इस मत का समन्वय वे अपने पहले मत से कैसे कर सकते थे। उन्हे यह भी चिन्ता थी कि जो मुसलमान हिन्दुस्तान मे रह गये हैं उन्हे अपने को हिन्दुस्तानी समझना चाहिए और पाकिस्तान के मामले मे अधिक रुचि न लेनी चाहिए। जो इण्डिया या भारत बच गया वह उनके लिये हिन्दुस्तान था। जहाँ तक मैं समझ सका उनका विचार था कि जिस प्रकार एशिया महाद्वीप के सब रहने वाले एशियाई हैं, उसी प्रकार इण्डिया नाम के उप-महाद्वीप के सब रहने वालो को इण्डियन कहा जाय। इस प्रकार पाकिस्तान राज्य के रहने वाले पाकिस्तानी और बचे हुए भारत के रहने वाले हिन्दुस्तानी, दोनो को ही इण्डियन कहा जा सके।

अपनी तरफ से वे भारत को सदा हिन्दुस्तान के नाम से ही पुकारते थे। १३ अगस्त १९४७ को कराची मे जो लार्ड माउण्टबेटन को उन्होने विदाई का भोज दिया उसमे कहा कि 'विभाजन से

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान नाम के दो देश स्थापित हुए है' और उन्होने आशा प्रकट की कि 'दोनो के ही रहने वाले परस्पर शान्ति से रहेगे।' विभाजन के सम्वन्ध मे लार्ड माउण्टवेटन के प्रयत्नो को उन्होने मान्यता प्रदान की। उन्होने 'धन्यवाद' का शब्द कही नही प्रयुक्त किया। अपने भाषण मे उन्होने 'अप्रीसियेशन' (मान्यता) शब्द का कई वार प्रयोग किया।

पीछे जनवरी सन् १९५० मे जब हमारा सविधान तैयार हुआ तो इण्डिया और भारत दोनो ही नाम अपने देश को दिये गये। कुछ लोग चाहते थे कि इसे भारत का ही नाम दिया जाय। अन्यो का विचार था कि जब 'इण्डिया' के नाम से देश शताब्दियो से ससार मे जाना गया है तो नक्शे पर से इस नाम को नही हटाना चाहिए। इस कारण पहले की तरह अग्रेजी मे देश का नाम 'इण्डिया' ही रहा और पहले की ही तरह अपनी भाषाओ मे हम अपने देश को 'भारत' के ही नाम से जानते है। विगत आन्दोलन के समय यद्यपि अग्रेजी मे हम 'क्विट इण्डिया' कहते थे, पर हिन्दी मे 'अग्रेजो भारत छोडो' का ही नारा लगाते थे।

हम सभी महाभारत की करुण कथा से परिचित हे। उसमे कौरवो ओर पाण्डवो के गृह्-कलह और महायुद्ध का वर्णन है। इस कारण लोगो का ऐसा विचार हो गया है कि महाभारत का अर्थ ही युद्ध है, और जहाँ कही कोई भीषण झगडा हो जाता है, हम कह बैठते है कि वहाँ महाभारत हो रहा है। वास्तव मे भरत कुल के प्रतापी राजकुमारो की कथा महाभारत मे दी हुई हे। साधारण तौर से यह विचार किया जाता है कि इस कुल के प्राथमिक जनक भरत थे जिन्हे शकुन्तला का पुत्र माना जाता है। शकुन्तला राजा दुष्यन्त की स्त्री थी जिन्हे वे भूल गये थे और उन्होने त्याग दिया था। कुछ लोगो का ऐसा विचार है कि भारत देश और भारतीय जनसाधारण का नाम यो पडा कि इस पुरातन राजकुमार का नाम भरत था अर्थात् वे राजा के पद का 'भार' उठाये हुए थे। जो कोई भी शासन के अधिकार मे होता है उसका वहुत वडा उत्तरदायित्व हो जाता है।

सज्जनगण राज शक्ति को भार मानते है जिसे कर्त्तव्यवश उन्हे उठाना पडता है। व्यक्तिगत महत्व के लिये उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। कुछ विद्वानो का यह भी विचार है कि जैन सम्प्रदायो के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पुत्र भरत के नाम से हमारे देश और जाति का नाम पडा है। जो कुछ भी हो, चाहे भरत के पिता दुष्यन्त रहे हो चाहे ऋषभ, हम सबको इसका गर्व और गौरव है कि हम सब भरत के वंशज है और हम अपने देश को भारत के नाम से ही जानते हैं और उसकी सन्तान होने का हमे अभिमान है।

पर जिन्ना साहब चाहते थे कि हमारे देश का नाम 'हिन्दुस्तान' हो और हम भारतीय 'हिन्दुस्तानी' के नाम से जाने जायँ। वे किसी दूसरी बात को मानने को नही तैयार थे और वे हमारे दिये हुए नाम को स्वीकार भी करना नही चाहते थे। सारे ससार मे भारतीय मुसलमानो को 'हिन्दी या हिन्दू मुसलमान' कहा जाता है। यद्यपि जिन्ना साहब की परिभाषा के अनुसार उन्हे हिन्दू नही कहा जा सकता, पर वे हिन्दुस्तानी तो माने ही जा सकते है क्योकि वे हिन्दुओ के देश मे रहते थे जैसे कोई भी विदेशी रह सकता है। जहाँ तक मुझे मालूम है भारतीय मुसलमान अपने को केवल मुसलिम पुकारते हैं। वे ससारव्यापी मुसलिम बिरादरी का अपने को अंग समझना चाहते हैं। वे 'इण्डियन' या 'भारतीय' अपने को पुकारना नही पसन्द करते।

जब मैं पाकिस्तान मे भारत का उच्चायुक्त था, मुझे कितनी ही सभाओ मे जाना पडा जहाँ मेरे मित्रगण बुलाते थे, जिन्हे मैं पहले से जानता था अथवा जिनका सम्पर्क मुझसे वहाँ हुआ था। ये सभाये कभी बहुत बडी होती थी और कभी छोटी। वक्तागण बडे जोश के साथ श्रोताओ से पूछते थे कि 'क्या आप "ताजिरात हिन्द" (भारतीय दण्ड विधान, इण्डियन पेनल कोड) के अनुसार शासित होना चाहते है या "कुरान" के अनुसार।' यह स्वाभाविक ही था कि श्रोतागण उत्साह के साथ उत्तर दे—'कुरान'। इस पर वक्तागण कहते थे कि 'यदि आप ऐसा चाहते हैं तो स्त्रियो को पर्दे मे रखिए और चोरो के हाथ काट दीजिए। उनका कहना था कि 'इसलाम

मे इसका अकाट्य आदेश दिया गया है।' जब मै भोज आदि मे मुसलिम स्त्रियो से मिलता था और उनसे पूछता था कि 'आपका इस सम्बन्ध मे क्या मत है' तो उनका कहना था कि 'अब तो हम पर्दे से बाहर आ गये। फिर पर्दे मे नही जा सकते।' बहुतो का यह भी विचार था कि चोरो का हाथ काट देना अत्यधिक कठोर दण्ड है। जो कानून इस समय वहाँ समाज विरोधी लोगो को रोकने के लिए है, वह पर्याप्त है।

मुझे तो पूरा विश्वास है कि जब अग्रेजो की सहायता से जिन्ना साहब ने एक नये स्वतन्त्र राज्य अथवा देश को ससार के मानचित्र पर अकित किया जो किसी के लिए भी कर सकना बहुत बडी बात थी, तब उन्होने सोचा कि पाकिस्तान मे अन्य मुसलिम देशो की आबादी से जब अधिक मुसलमानो की आबादी होगी तब पाकिस्तान के मुखिया होने के नाते सारे मुसलिम जगत् के लिए वे आराध्य पुरुष हो जायेगे और वे सबके ही नेता माने जायँगे। अफगानिस्तान, ईरान, सऊदी अरेबिया से आये हुए राजदूतो से बाते करने से मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि अपने हृदयो मे सबसे अधिक भक्ति वे अपने-अपने देशो के प्रति रखते है। उनके ऐसे विचार नही है जैसे कि भारतीय मुसलमानो के रहे है कि उनके देश के पहले उन्हे अपने धर्म को स्थान देना चाहिए। अफगानिस्तान और पाकिस्तान का परस्पर सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नही रहा यद्यपि जिन व्यक्तियो ने पाकिस्तान की भावना आरम्भ की थी उन्होने उसकी 'अ' की मात्रा को अफगानिस्तान से सकेत करती हुई बतलाया था।

जब सारे मुसलिम जगत् ने जिन्ना साहब को अपना सर्वश्रेष्ठ नेता नही माना तो अवश्य ही उन्हे इस स्थिति से आश्चर्य हुआ। उनका दिल ही टूट गया। वे बडे हतोत्साहित हो गये। पाकिस्तान की स्थापना के बाद विगत १८ वर्षो मे एक के बाद एक कितनी ही घटनाये घटी। इनको देखकर ऐसा मालूम पडता है कि जिन उद्देश्यो से मातृभूमि को काटकर नया राज्य या देश स्थापित किया गया था उनमे से किसी की भी पूर्ति नही हुई। सम्भव है मै गलती कर रहा हूँ, पर मेरे हृदय मे दुख अवश्य है। जिन्ना साहब की

सितम्बर १६४८ मे मृत्यु हुई। उन्होने भारतीय सविधान का अन्तिम रूप नही देखा।

उनके कुछ अनुयायी विशेषकर अग्रेजी पत्र 'डान' और उसके सम्पादक जनाव अल्ताफ हुसैन साहव विशेपकर यह वात जानते थे कि जिन्ना साहव नही चाहते थे कि विभाजन के वाद इण्डिया को 'इण्डिया' पुकारा जाय। वे जानते थे कि जिन्ना साहव की इच्छा थी कि इसका नाम 'हिन्दुस्तान' हो। उन्हे इस वात से क्रोध था कि आरम्भ मे ही हमने उनकी वात नही मानी। इस कारण जव उन्होने देखा कि हमने अपने को पर्याय स्वरूप 'भारत' का भी नाम दे रखा है, तो उन्होने 'भारत' शब्द 'इण्डिया' शब्द से अधिक पसन्द किया। यही कारण है कि पाकिस्तान के समाचारपत्र इस देश को 'भारत' और इसके निवासियो को 'भारती' नाम से पुकारते रहे। उन्होने 'इण्डिया' और 'इण्डियन' शब्दो का प्रयोग करना अस्वीकृत कर दिया। पर जव राष्ट्रपति अय्यूव खाँ ने आदेश दिया तव 'भारत' और 'भारती' के स्थान पर 'इण्डिया' और 'इण्डियन' शब्दो का प्रयोग होने लगा। इस कहानी से हम अपने हृदय का जितना आप्यायन करना चाहे कर ले, इसके परिणाम से जो शिक्षा लेना चाहे ले ले।

मुसलिम राज्य--अथवा इस्लामी

भारत के उच्चायुक्त के नाते मेरे कार्य का केन्द्र कराची था, पर मै वस्तुस्थिति को स्वय देखने सिन्ध के आतरिक भागो मे दौरा भी किया करता था। नगरो मे अधिकतर सख्या मे हिन्दू वसे थे। मै उनसे कहता था कि आप यहाँ से चले जाने मे जल्दी न करे। मै प्रयत्न करता था कि जितना सम्भव हो उनको उत्साह और वल प्रदान करूँ क्योकि वे सभी अपना माल-असवाव वाँधकर जाने की तैयारी कर रहे थे। दृश्य दु खद और आश्चर्यजनक था। मुसलिम होकर अरव लोग आक्रमण के उद्देश्य से आठवी शताब्दी मे भारत मे प्रथम वार सिन्ध मे ही आये थे। इस्लाम की उत्पत्ति के पहले से ही वे लोग व्यापार के हेतु दक्षिण भारत मे आया करते थे। इस प्रकार मुसलमानो से सिन्धियो का जितना पुराना सम्वन्ध था उतना भारत के किसी दूसरे भाग से नही था। सिन्धी हिन्दू और मुसलमानो मे परस्पर का वडा सद्भाव रहा। ऐसा मैने किसी दूसरे स्थान मे नही पाया। दोनो धर्मावलम्बियो के सदस्यो मे वडी गहरी और सच्ची व्यक्तिगत मैत्री रही।

कुछ सम्मानित सिन्धियो ने स्वय ही मुझसे कहा था कि हिन्दू धर्म का सिन्धियो पर वहुत कम प्रभाव रहा। यद्यपि वे अपने को हिन्दू कहते थे, उनका सामाजिक क्रम वहुत कुछ मुसलिम प्रथा के अनुसार चलता था। सिख सम्प्रदाय के एक विशेष रूप का उन पर वहुत प्रभाव था। सिख लोग अपने धर्म स्थानो को गुरुद्वारा कहते है। सिन्धी उन्हे गुरु मन्दिर कहते है। सिन्ध मे सभी स्थानो पर ऐसे गुरु मन्दिर रहे और वहाँ वडी भक्ति के साथ ग्रथ साहव का पाठ किया जाता था। सिन्ध मे वहुत-से हिन्दू मन्दिर भी थे। इनके उपासक प्राय गुजरात, उत्तर प्रदेश और दक्षिण से आये हुए स्त्री-पुरुष थे। मुझे ऐसा काम प्रथम बार ही करने को मिला था। काग्रेस

जन होने के नाते साम्प्रदायिक सद्भावना की मुझे वडी लालसा थी। अपनी व्यक्तिगत कौटुम्बिक और सामाजिक परम्पराओ को भी मैं नही भूल सकता था।

ऐसी अवस्था मे मुझे वडा दु ख होता था कि हिन्दू लोग अपने घरो को छोड रहे हैं। अपने देश मे व्यक्तिगत अथवा छोटे-छोटे समुदाय एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान मे जाते रहे हैं, पर न पौराणिक न ऐतिहासिक काल मे हमे ऐसा कोई उदाहरण मिलता हे जहाँ करोडो नर-नारी एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर चले गये हो जैसा कि देश के दु खद विभाजन के वाद के दृश्यो से हमे अनुभव हुआ। हमारे देश मे कितने ही आक्रमण हुए, आतरिक कितने युद्ध हुए, राज्य और राज्यो की सीमाएँ वदलती रही, पर किसी भी समय सारा समाज का समाज एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर नही गया। उच्चायुक्त की हैसियत से मेरा यह दुर्भाग्य था कि मैं ऐसे कष्टदायी दृश्यो को देखूँ और वृहद् रूप से प्रस्थान करने मे लोगो की सहायता भी करूँ। सम्भव है कि किसी दिन इतिहासज्ञ और मनोवैज्ञानिक विद्वद्गण हमे वतला सके कि इस विशेप अवसर पर ऐसे दृश्य कैसे सम्भव हुए जव हम अपने अनन्त काल के इतिहास मे कितनी ही क्रातियो का अनुभव कर चुके और अपने स्थानो पर ही वने रहे।

एक दिन दौरे पर सिन्ध के मुख्य मन्त्री जनाव खुरो साहव का और मेरा साथ हो गया। उन्होने मुझसे कहा कि कोई भी मुसलमान देश का विभाजन नही चाहता था और न पाकिस्तान की स्थापना करने का इच्छुक था। उन्होने यह भी कहा कि 'मैं स्वय मुसलिम लीग की अन्तरग गोष्ठियो मे रहा हूँ और जो कुछ कह रहा हूँ अपनी निज की जानकारी से कहता हूँ। हम तो केवल सौदा कर रहे थे जिसमे कि सयुक्त भारत मे हमे अधिक से अधिक पद और अधिकार मिल सकता।' इगलैंड के एक प्रतिष्ठित पत्र के अग्रेज सवाददाता ने कराची मे मुझसे कहा कि 'जिन्ना साहव को अपने जीवन मे सवसे वडा धक्का तव लगा जव पाकिस्तान की स्थापना हुई। वह स्वय भी इसे नही चाहते थे और जव वह मिल गया तव

उन्हे समझ मे नही आ रहा है कि उसके लिए क्या किया जाय। उसकी व्यवस्था वे नही कर पा रहे है।' जो कुछ हो, मैं यह सब इस कारण कह रहा हूँ कि विभिन्न लोगो मे वातचीत कर जो वाते मुझे रसमय और शिक्षाप्रद प्रतीत हुईं उन्हे मैं अपने पाठको को वतला दूं। मेरे लिए तो वे दिन वडे कठिनाई के थे।

सितम्वर १९४७ मे दौरा करते हुए मैं हैदरावाद पहुँचा। कराची के वाद सिन्ध का यह सवसे महत्त्व का नगर था, सम्भवत अव भी वैसा ही है। सिन्धी व्यापारियो के लिए तो यह वहुत वडा केन्द्र था। ससार के विभिन्न देशो मे व्यापार करते हुए साल मे वे एक वार अवश्य हैदरावाद आते थे। एक प्रकार से यह उनका तीर्थ स्थान था। वे अपना धर्म समझते थे कि हैदरावाद अवश्य आवें। साधु वस्वानी का भी आश्रम वही था। उनकी किन्ही स्त्री उपासिका की हत्या हो गयी थी। मैं सवेदना प्रकट करने गया और देखा कि वे भी वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी मे है। वहाँ पर उनके लिए भी जीवन का क्रम असह्य हो रहा था। हैदरावाद मे मुझे कराची के राजभवन से टेलीफोन द्वारा आवश्यक सन्देश दिया गया कि महाराज्यपाल (गवर्नर जनरल) जनाव मुहम्मद अली जिन्ना साहव मुझसे मिलना चाहते है और अमुक दिन भोजन के लिए वे निमन्त्रित कर रहे है। राज्य के मुखिया का ऐसा निमन्त्रण आदेश समझा जाता है। राजनय मण्डल (डिप्लोमैटिक कोर) मे मै था। इसके सदस्यो से तो विशेप रूप से आशा की जाती हे कि वे देश के विशिष्ट लोगो के प्रति अत्यधिक शिष्टाचार का व्यवहार करे। अपने दौरे को यही समाप्त कर मैं कराची चला गया। जिन्ना साहव अपने राजभवन को विल्कुल अग्रेजी प्रथा से चलाते थे। इससे मैं परिचित नही था। मेरे लिए सव नया था। एक तो मै काशी ऐसी पुरानी नगरी का रहने वाला था। फिर विगत ३० वर्षों के अपने राजनीतिक जीवन को मैने काग्रेस के कार्य मे व्यतीत किया था, और व्रिटिश राज्य से असहयोग करता रहा। ऐसी अवस्था मे मै राजभवन और उसकी कार्य-प्रणालियो से पूर्ण रूप से अनभिज्ञ रहा।

मेरा ऐसा विचार था कि मुझे व्यक्तिगत रूप से भोजन करने के लिए बुलाया गया है। पर वहाँ तो मैंने वहुत वडा आयोजन पाया और देखा कि वहुत से अन्य लोग भी निमन्त्रित हुए हैं। भोज के पहले अतिथियो को एक पक्ति मे खडा किया गया। जिन्ना साहव मय अपनी वहन मिस फातिमा जिन्ना के आये और दोनो ने सवसे हाथ मिलाया। वे चले गये और तव हम सवसे भोजन के कमरे मे चलने को कहा गया। शाकाहारी होने के कारण मेरे लिए विशेष कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो जाती थी। नाना प्रकार की शरावे सुन्दर-सुन्दर वोतलो मे मेहमानो के सामने रखी जाती थी। वोतल के गले मे चाँदी की सिकडी से चाँदी का पत्तर लटका रहता था जिस पर शराव का नाम लिखा रहता था। एक अतिथि के वाद दूसरे अतिथि के पास यह वोतले आती थी।

भिन्न-भिन्न शरावो के लिए भिन्न-भिन्न ग्लास भी टेवुल पर सामने रखे रहते थे। कुछ लोग शराव अपने ग्लास मे भर लेते थे, और जो लोग शराव नही पीते थे वे वोतल को अपने पडोसी के सामने रख देते थे। मैंने यह क्रम प्रथम वार देखा। भोजन के वाद हम सव गोल कमरे (ड्राइग रूम) मे ले जाये गये। जिन्ना साहव स्वय अतिथियो के पास अभिवादन करने नही आये जैसा कि मैंने सोचा था कि वे करेंगे। वे एक कोने मे सोफा पर वैठ गये जहाँ पर एक-एक कर थोडे से अतिथि ले जाये गये। उन विशेष लोगो के नाम एक यूरोपीय फौजी अफसर के पास थे जो सम्भवत गवर्नर जनरल के सैनिक-सचिव (मिलेटरी सेक्रेटरी) थे। वाकी सव मेहमान इधर-उधर खडे रहे।

मुझे सवसे पहले वुलाया गया। वडी शिष्टता के साथ जिन्ना साहव ने मेरा स्वागत किया। उनके पास मेरे वैठते ही उन्होने कहा—'मिस्टर श्रीप्रकाश आप कैसे हैं। वहुत दिनो के वाद मैंने आपको देखा।' मैंने भोज के निमन्त्रण के लिए उनका वहुत धन्यवाद किया और कहा कि 'मैं वहुत आराम से हूँ। दौरा करता रहा। लरखाना जिला मे मोहन-जो-दडो को भी मै देख आया जिससे कि हमारी सभ्यता ६ हजार वर्ष पुरानी प्रमाणित होती है।' मैंने उन्हे वतलाया

कि 'इस अपनी खोई हुई सभ्यता का हाल मैने प्रथम बार डाक्टर रखालदास बन्द्योपाध्याय से सुना था जिन्होने इस स्थान का पता लगाया था।' बहुत दिनो पहले इस विषय पर उनका भाषण काशी मे हुआ था।

मैने जिन्ना साहब का इस वास्ते भी धन्यवाद किया कि मेरे दौरे के सम्बन्ध मे स्थानीय अफसरो ने बडी शिष्टता का मेरे साथ व्यवहार किया। जिन्ना साहब ने मुझसे कहा कि 'तुम जहाँ चाहो जा सकते हो। शासन की तरफ से हर प्रकार की सुविधा तुम्हे दी जायगी।' तब मैंने कहा कि 'यद्यपि देश का विभाजन हो गया है, मै तो अपने जीवन मे दोनो भागो को भिन्न-भिन्न देश नही मान सकता। मै तो भारत को एक ही देश सदा मानूंगा, मेरे लिए पाकिस्तान के निवासी भाई और देशवासी ही बने रहेगे।' मैने जिन्ना साहब से यह भी कहा कि 'मै कभी भी नही भूल सकता कि वे भी कांग्रेस के नेताओ मे रहे है और मुझे उनके लिए अब भी उतना ही आदर और सम्मान है जितना पहले था।'

बात करते हुए मैने उनसे पूछा कि 'यदि आप अनुमति दे तो मै एक बात कहना चाहता हूँ। पर मुझे इसकी चिन्ता है कि इसका कोई अन्यथा अर्थ न लगाया जाय। मै पहले से ही क्षमा याचना कर लेना चाहता हूँ और जो कुछ मै कहना चाहता हूँ तभी कहूँगा जब आप कहने की अनुमति देगे।' इस पर उन्होने कहा कि 'जो कुछ कहना है बिना सकोच कहो। मेरे बहुत से खुशामदी है। मै चाहता हूँ कि कोई ऐसा मित्र भी तो मिले जो साफ-साफ बात कहे। जो कुछ कहना हो कह डालो।' इस पर मै थोडा उत्साहित हुआ पर फिर भी कुछ घबडा रहा था क्योकि वहाँ पर राजनयिक (डिप्लोमैट) का मेरा पद था। इस पद पर बहुत ही सम्भलकर बात करना होता है। मैने कहा कि 'मै अपने को आपका मित्र समझता हूँ पर अपनी बात तब ही कहूँगा जब आप आश्वासन देगे कि जो कुछ मैं कहूँगा उससे आप बुरा न मानेगे।' उनके बार-बार आश्वासन देने पर मैने कहा—और आज भी वे शब्द मुझे स्मरण है —'मै जानता हूं कि विभिन्न सम्प्रदायो के आधार पर ही देश का

विभाजन हुआ है पर जब विभाजन हो गया तो मैं कोई कारण नही देखता कि इस बात पर जोर दिया जाय कि पाकिस्तान "इस्लामी" राज्य है।'

मैंने यह भी कहा कि 'यदि पाकिस्तान को "इस्लामी" राज्य न कहा जाय तो जो यहाँ गैर-मुसलमान हैं, वे यहाँ से न चले जायेंगे जैसा कि वे चले जा रहे हैं।' मैंने उन्हे बतलाया कि 'आतरिक अचलो मे मैंने ऐसे बहुत से स्थान देखे जिन्हें छोड कर वहाँ से सब निवासी चले गये। मेरा स्वय हजारो की सख्या मे ऐसे लोगो से सम्पर्क हो रहा है जो कि अपने घरो को और अपनी सब प्रिय वस्तुओ को त्याग कर चले जा रहे हैं।' इस पर जिन्ना साहब ने कहा कि 'मैंने तो "इस्लामी" शब्द का कभी प्रयोग नही किया है। तुम जिम्मेदार आदमी हो, तुम्ही बतलाओ कि मैंने ऐसा कहाँ कहा है।' इस पर मैंने कहा कि 'प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ ने अभी एक दिन पहले कहा था कि पाकिस्तान "इस्लामी" राज्य है।' इस पर उन्होने कहा कि 'जाकर तुम लियाकत से लड़ो, मुझसे क्यो लडते हो।'

मैं पीछे नही हटना चाहता था। मैंने कहा कि 'आपने लाहौर से ३० अगस्त को आकाशवाणी से जो सन्देश प्रसारित किया था उसमे आपने पाकिस्तान को "इस्लामी" राज्य कहा था।' उन्होने कहा कि 'मैंने ऐसा कभी नही कहा था और तुम मुझे मूल भाषण दिखलाओ।' मैंने यह भी कहने की धृष्टता की कि 'आपने कराची के वकीलो के सामने कहा था कि पाकिस्तान की स्थापना के बाद यहाँ के हिन्दू-मुसलिम निवासी अपना साम्प्रदायिक भेद-भाव छोड कर अपने को सब पाकिस्तानी मानें। आपके हिन्दू और मुसलमान के पृथक्-पृथक् राष्ट्र के होने की बात कहाँ गयी?' इस पर वे एकाएक खड़े हो गये। उनका चहरा तमतमा उठा। स्पष्ट था कि वे क्रुद्ध हो गये थे। मैं तुरन्त विदा कर दिया गया। मैं यही आशा कर सकता हूँ कि जो लोग मेरे पीछे उनके पास गये उनसे उनको कोई परेशानी न हुई होगी और उन्होने जिन्ना साहब के साथ मुझसे अधिक अच्छा बर्ताव किया होगा। मेरा दुर्भाग्य था

कि मुझे विश्वास था कि आकाशवाणी वाले अपने सन्देश मे उन्होने 'इस्लामी' शब्द का अवश्य प्रयोग किया था। वकीलो के सामने किये हुए उनके भाषण को भी मै नही भूल सकता था।

दूसरे दिन मैं कराची के एक सम्मानित दैनिक पत्र के हिन्दू सम्पादक के कार्यालय मे गया जिन्हे मै अच्छी तरह पहले से जानता था। उनसे मैने शुरू सितम्बर के उन अको को माँगा जिनमे जिन्ना साहब का सन्देश पूर्ण रूप से छपा था। सम्पादक को कुतूहल होना स्वाभाविक था। मैने गुप्त रूप से उन्हे जिन्ना साहब के वार्तालाप की कथा सुनायी। खेद है कि सम्पादक जी बात को अपने तक न रख सके। उसको उन्होने अपने पत्र मे प्रकाशित कर दिया। इस पर जिन्ना साहब का पत्र मुझे मिला जिसमे उन्होने उचित रूप से शिकायत की थी कि मैने भोजनोपरात वार्तालाप को इस प्रकार से प्रकाशित कर दिया। मै स्वय सम्पादक जी से बहुत रुष्ट हुआ पर मैं विवश था। मैने जिन्ना साहब से क्षमा-याचना की और साथ ही समाचारपत्र का कतरन भी भेजा जिसमे उनका आकाशवाणी वाला भाषण छपा था।

उस भाषण का मैने बडी सावधानी से अध्ययन किया। वास्तव मे उसमे 'इस्लामी राज्य' का कही प्रयोग नही हुआ था। एक दर्जन जगह 'मुसलिम राज्य' का प्रयोग किया गया था। मैने अपने पत्र मे लिखा कि 'मुझे दु ख है कि मैने "मुसलिम" शब्द को ही "इस्लामी" समझा। जहाँ तक मै जानता हूँ साधारण लोग दोनो मे कोई अन्तर न देखेगे। विशेषकर जब प्रधान मन्त्री और अन्य लोग "इस्लामी" शब्द का प्रयोग बराबर कर रहे है और अपने सार्वजनिक भाषणो और लेखो मे वे केवल "मुसलिम" शब्द से सन्तुष्ट नही होते।' यह स्पष्ट था कि जिन्ना साहब उनकी कार्रवाई मे कोई हस्तक्षेप नही करते थे।

मुझे जिन्ना साहब के यहाँ से कोई उत्तर नही मिला। पर मै सोचता रहा कि मुसलिम और इस्लामी राज्य मे क्या अन्तर हो सकता है। जिस परिणाम पर मै पहुँचा वह ठीक है या नही यह मैं नही कह सकता। मेरे पास कोई प्रमाण नही है कि मेरा मत ठीक

है। जिन्ना साहब बहुत बडे कानूनदाँ थे। जिन शब्दो मे साधारण जन कोई अन्तर नही देखेंगे उनमे भी वे अन्तर देख ही लेते थे। मेरा ऐसा विचार होता है कि मुसलिम राज्य का अर्थ यह है कि राज्य के अधिकतम निवासियो का धर्म मुसलिम अर्थात् इस्लाम है। ऐसे राज्य मे सब शासनाधिकार उन लोगो के ही हाथ मे होना चाहिए जो इस धर्म के अनुयायी हो। 'इस्लामी' राज्य का यह अर्थ हो सकता है कि इस्लाम धर्म के आदेशानुसार राज्य का सचालन किया जाय अर्थात् राज्य के लिए जो सिद्धान्त उसके धार्मिक ग्रथो मे दिये गये हो वे ही वास्तव मे कार्यान्वित किये जायें।

ऐसी अवस्था मे राज्य इस्लामी हो सकता है यद्यपि राज्य के अधिकतर अधिवासी गैर मुसलिम ही क्यो न हो। सम्भवत जिन्ना साहब यह चाहते थे कि पाकिस्तान मुसलिम राज्य माना जाय अर्थात् अधिकतर अधिवासियो के मुसलिम होने के कारण शासन अधिकार उनके हाथ मे रहे। आधुनिक कानून और न्याय शास्त्र की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के कारण वे सम्भवत यह समझते थे कि जहाँ तक शासन का प्रकार है वह उन सिद्धान्तो के अनुसार नही चलाया जा सकता जो तेरह सौ वर्ष पूर्व दूसरे देश और काल मे और जीवन की दूसरी अवस्था मे निर्धारित किया गया था। पर मैं ठीक नही कह सकता कि उनका क्या मतलब था। अपनी राय पुष्ट करने का मुझे कोई मौका नही मिला।

चाहे जिन्ना साहब का यही मतलब रहा हो चाहे वे मुसलिम और इस्लामी राज्यो की रूपरेखा मे ही अन्तर समझते रहे हो, इसमे कोई सन्देह नही है कि उन्होने अपने अनुयायियो को कोई आदेश नही दिया कि तुम 'मुसलिम राज्य' के वाक्य का ही प्रयोग करो, न कि 'इस्लामी राज्य' का। बात तो यह है कि पाकिस्तान के लिए एक के बाद एक जितने सविधान बनाये गये, उनमे राज्य को 'इस्लामी' ही कहा गया। आज की वस्तुस्थिति भी वही है। जैसा जो चाहे इसका अर्थ लगावे। इस सबका परिणाम तो हमारे सामने है ही।

कराची में भयंकर उत्पात

दिसम्बर १९४७ मे मै कराची (पाकिस्तान) से दिल्ली, काशी और कलकत्ता गया। दिल्ली तो प्रधान मन्त्री से मिलने गया और उनसे पाकिस्तान की स्थिति के सम्बन्ध मे बातचीत हुई। विदेशो मे स्थापित दूतावासो का कर्तव्य होता है कि वे अपने कार्य और अनुभवो के सम्बन्ध मे बराबर केन्द्र को विवरण देते रहे। साथ ही राजदूतगण बीच-बीच मे स्वय दिल्ली जा कर विदेश मन्त्रालय को हाल बतलाते है, और प्रधान मन्त्री से आगे के काम के सम्बन्ध मे परामर्श करते है, और आदेश लेते है। मै भी इसी तरह जाया करता था।

इस बार लौटते हुए मै ३ जनवरी को दिल्ली मे गाधीजी से बिडला हाउस मे मिला। यह उनसे मेरी आखिरी मुलाकात थी। २७ दिन बाद उनकी हत्या कर दी गयी। जैसा मै पुराने लेखो मे कह चुका हूँ, सितम्बर मे जब मै उनसे मिला था, तब वे मुझसे बहुत रुष्ट थे। कराची से लौटे हुए पुराने काग्रेस जनो ने उनके कान मेरे विरुद्ध भर दिये थे। पर इस बार उनसे मेरी बात अपेक्षाकृत अच्छे वातावरण मे हुई। उस समय श्री सोहरावर्दी भी उनके पास रहे। गाधीजी ने मुझसे कहा कि इनका मेरे साथ रहना मै बहुत पसन्द नही करता। पर मै लाचार था। सोहरावर्दी सयुक्त बगाल के मुख्य मन्त्री रह चुके थे। उनके समय हिन्दू-मुसलिम दगे हुए थे। लोगों ने इन पर ही आरोप लगाया कि यह दगो के लिए जिम्मेदार थे। पाकिस्तान के ससद् मे इनके मुसलिम साथियो ने ही इन पर इसके लिए दोषारोपण किया था। कलकत्ता मे ही इनका घर था। लोगो का कहना था कि अपने प्राण-भय से यह गाधीजी के साथ रहते है। क्या बात थी मैं नही कह सकता। ५० वर्ष पहले जब मै इगलैड मे पढता था, तो वह भी वहाँ पढते थे। यह दो भाई थे

और दोनो को ही मैं अच्छी तरह जानता था। पीछे पाकिस्तान मे भी उनका मुझसे मिलना होता रहता था, और उन पुराने दिनो को याद कर यह मुझसे अच्छा सम्बन्ध रखना चाहते थे। काशी मे एक बार यह मेरे यहाँ ठहर भी चुके थे। महात्मा गाधी के चारो तरफ बराबर ही बहुत लोग बैठे रहते थे। इस कारण खुल कर उनसे बात करने का किसी को अवसर नही मिलता था। मैं बहुत चाहता था कि उनके मन मे जो विकार मेरे सम्बन्ध मे थे उसे दूर करूँ, पर मैं उसमे सफल नही हुआ। इस सम्बन्ध मे मैंने उन्हे पत्र भी लिखा था, पर मुझे कोई उत्तर नही मिला। सम्भवत उनके सचिवगण ने मेरा पत्र उनके पास पहुँचाया न होगा, नही तो वे उत्तर अवश्य देते। शायद ही मैंने कोई पत्र उन्हे लिखा हो जिसका उत्तर मुझे न मिला हो। पर इसका नही मिला। मैं अपनी सफाई नही ही दे सका। इसका मुझे दु ख रह गय/होने व. ...

एक दिन दिल्ली मे और ठहर कर औ/ानून और न्याः कर मैं ५ जनवरी १९४८ को कराची लौटा। भ/सम्भवत यह स दिल्ली और कलकत्ता के अतिरिक्त मैं काशी मे घर् सिद्धान्तो भी मिलने गया, और लखनऊ मे भी मित्रो और सहयोगियो से मिला। देश का सौभाग्य था कि उत्तर प्रदेश मे उस समय श्रीमती सरोजिनी नायडू राज्यपाल थी। हैदराबाद की होने के कारण मुसलमानो से इनकी बहुत मैत्री थी। लखनऊ मे मुसलमान लोग इन्हे बराबर घेरे रहते थे। उस समय के वातावरण मे इनके प्रभाव के कारण मुसलमानो की रक्षा हुई नही तो जो स्थिति उस समय थी, उन पर बहुत सकट आ सकता था।

मेरी गैरहाजिरी मे सिन्ध के किसी आतरिक प्रदेश से मेरे दूतावास मे एक तार आया था कि कुछ सिक्ख लोग अमुक रेल से ६ जनवरी को कराची पहुँच रहे हैं। मेरे एक सहायक (अटैचे) ने तार लिया और उसे बिना कुछ महत्त्व दिये अपनी जेब मे रख लिया। मुझे भी इसकी कोई खबर नही दी। यह सिक्ख लोग दूसरे दिन आने वाले थे। यदि मुझे मालूम होता तो उनके स्वागत का और ठहरने का मै कुछ प्रबन्ध करता। मैं तो एक दिन पहले ही

लौटा था। जब मुझे कुछ सूचना नही दी गयी तो मै क्या कर सकता था। इस सब का तो मुझे कई दिन पीछे पता लगा। यह सब सिक्ख उतरे और सब की निर्मम हत्या कर दी गयी। इसका मेरे हृदय पर सदा ही भारी दु ख बना रहेगा। शायद इनकी सख्या ११७ थी। मुझे ठीक याद नही। सिक्खो और मुसलमानो मे उस समय विशेष रूप से वैर था। वे एक दूसरे को देख नही सकते थे। पूर्वी और पश्चिमी पजाब मे एक दूसरे के ऊपर भयकर आक्रमण कर रहे थे। निर्मम हत्याये हो रही थी। बडी लूटमार मची थी।

दाढी और साफा आदि से सिक्ख तो फौरन ही पहचान लिए जाते है। कराची मे पूर्वी पजाब से बहुत से मुसलमान आये थे। इनके हृदयो मे वहाँ की स्थिति की बहुत चोट थी। सिक्खो को यह बरदाश्त नही कर सकते थे। यह सिक्ख जो कराची आये वह बिल्कुल ही असहाय अवस्था मे वहाँ पहुँचे थे, क्योकि हमारे दूतावास की तरफ से उनके लिए कोई प्रबन्ध नही था। वे सब मारे गये, और कराची मे इतना भयकर जोश फैला कि हिन्दुओ के कितने ही मकान लूट लिये गये। सम्भवत एक करोड की हिन्दुओ की सम्पत्ति उस दिन नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। वे अपने मकानो से निकाल दिये गये। यह सब तीसरे पहर की घटना है। भयकर आतक फैला। मेरे दूतावास मे सैकडो नर-नारियो ने आकर आश्रय लिया।

पाकिस्तान के उच्च अधिकारीगण मुझसे मिलने आये। वहाँ के गृह-विभाग के बडे अफसर जनाब आगा शाही ने मुझसे कहा कि आपके व्यक्तिगत लिहाज से उत्पात बन्द हुआ, नही तो मालूम नही क्या हो जाता। मै नही कह सकता कि किस कारण उन्होने ऐसा मुझसे कहा। मैं तो इस से सन्तोष नही ही कर सकता था कि मेरे ऊपर व्यक्तिगत रूप से कृपा कर इन लोगो ने अधिक अनर्थ नही किया। वहाँ के बडे-बडे अफसर अवश्य विह्वल थे। सौभाग्यवश मेरे मित्र का मकान जहाँ मै ठहरा था नही लूटा गया यद्यपि इधर-उधर के मकान लुटे। इस घटना के बाद वहाँ पर पुलिस गार्ड को रखा जाने लगा। दूतावास मे तो पहले से ही इसका प्रबन्ध था।

मैं शहर की स्थिति देखने निकला। कितने ही हिन्दू अपने-अपने घरो से भाग-भाग कर सार्वजनिक स्थानो पर—विद्यालयो आदि के अहातो मे—शरण ले रहे थे। वहाँ के प्रधान सेनापति जनरल अकवर खाँ, जिन्हे मैं पहले से ही जानता था और जो हमारे विशिष्ट काग्रेस जन और सहयोगी अलीगढ के ख्वाजा अब्दुल मजीद के रिश्तेदार थे, मेरे साथ हो लिये। वे वहुत दुखी थे। उनकी कितने ही हिन्दुओ से निज की मैत्री थी। नगर की रक्षा के लिए सेना आ गयी थी। मेरे सामने जनरल साहव ने अपने सिपाहियो को हुकम दिया कि यदि गोली चलाने की आवश्यकता हो तो 'ऐसे गोली मारो कि मृत्यु हो जाय' (शूट टू किल)।

श्री रामकृष्ण आश्रम मे भी मैं पहुँचा। इस सस्था को मैं वर्षों से जानता था। कराची मे अपनी पहली यात्राओ मे भी मैं यहाँ गया था। जव मैं उच्चायुक्त होकर आया तव तो मैं प्रति सप्ताह ही वहाँ जाया करता था। विद्वान स्वामी रगानाथानन्द इसके मुखिया थे। यह वडे ही लोकप्रिय प्रचारक रहे हैं। इनका भाषण सुनने के लिए वहुत से लोग एकत्रित हुआ करते थे। उस समय वे वहाँ नही थे। भारत मे कही दौरे पर गये थे। यहाँ के सव स्वामी लोगो ने हमारे दूतावास मे आश्रय लिया। पुस्तकालय से पुस्तको को निकाल कर आततायियो ने उनमे आग लगा दी। जलती हुई पुस्तक राशि के सवसे ऊपर मैंने अपने पिता श्री डाक्टर भगवान् दास की अग्रेजी की पुस्तक की एक प्रति देखी जिसका नाम था 'सव धर्मो की मौलिक एकता' (एसेशियल यूनिटी ऑफ आल रेलिजस)। इस पुस्तक को ऐसी स्थिति मे देख कर हँसी आती यदि इतना दु खद प्रकरण न होता।

आधुनिक कराची के एक प्रकार से निर्माता और सर्वोच्च लोकप्रिय नागरिक श्री जमशेद मेहता थे। पिताजी से उनकी वडी मैत्री थी। थियोसाफिकल सोसायटी से निकट सम्पर्क रखने के कारण वे मुझसे वहुत प्रेम रखते थे, और उन दुर्दिनो मे मेरी और मेरे कार्यो मे हर प्रकार की सहायता करते थे। वे सवके ही मित्र थे। गाधीजी भी इनका वडा आदर करते थे। कराची के सव लोग

उन्हे जानते थे। पर जिस नगर को उन्होने बनाया, उसी मे वे पाकिस्तान की स्थापना के बाद अपरिचित हो गये। जहॉ सब लोग इनको मानते थे, वहॉ वह अनजान से हो गये। भग्न हृदय होकर थोडे दिनो बाद वह ससार से चले ही गये। शाम को यह भी घूमते फिरते मेरे पास पहुँचे। तीन चार सौ नर-नारी हमारे दूतावास के थोडे से कमरो और कोठरियो मे शरणार्थी होकर आ गये थे।

इनके भोजन की समस्या उठी। मुझे श्री जमशेद जी चन्दू हलवाई की दुकान पर ले गये। वहॉ पर हमने तीन-चार सौ आदमियो के लिए दाल, चावल, रोटी, सब्जी ली। बडे सन्तोष की बात थी कि इतना भोजन वहाँ तैयार मिल गया। रात के १० बजे का समय रहा होगा। जब मैने अपना बटुआ निकाला और उसका दाम देना चाहा तो चन्दू हलवाई ने दाम लेना अस्वीकार कर दिया। मैने उन्हे बहुत समझाया कि यह मैं अपने पास से नही दे रहा हूँ। मै भारत सरकार से इसे ले लूंगा। तब भी उन्होने एक पैसा भी नही लिया। मै भोजन लेकर दूतावास आया। सब लोगो को भोजन करा रात्रि को अपने मित्र के यहॉ चला गया। मुझे बडा सन्तोष हुआ जब मैंने देखा कि दुष्टो ने कम से कम मेरे मित्र के मकान पर कोई आक्रमण नही किया।

पीछे चन्दू हलवाई कराची से बम्बई चले गये। कुछ दिन पीछे अग्रेजी कपडे पहने हुए मुझसे मिलने आये। मैने पहचाना नही। इन्होने अपना परिचय दिया। मेरे पूछने पर कि आपने यह वस्त्र क्यो धारण किया, उन्होने कहा कि इसी से कराची मे अब हमारी रक्षा हो सकती है। हिन्दू लोग अपने वस्त्र मे निकलते डरते थे। चन्दू हलवाई की अब बम्बई मे बहुत सी दुकाने है और बम्बई के निवासियो को इनके द्वारा सिन्ध के स्वादिष्ट मिष्टान्नो का परिचय मिल रहा है। कराची के बहुत से हिन्दू वहॉ ही रह जाने की इच्छा रखते थे। मुसलमानो से इन्हे कोई द्वेष नही था। काग्रेसजन तो अवश्य रुष्ट थे। पर ६ जनवरी की भयकर दुर्घटनाओ के बाद किसी की ठहरने की हिम्मत न पडी।

वित्त मन्त्री जनाव गुलाम मोहम्मद जो मुझसे व्यक्तिगत बहुत स्नेह रखते थे, बडे दु खी हुए। उन्होने बडा प्रयत्न किया कि जो हिन्दुओ का माल लूटा गया है उसे वापस करा दिया जाय। एक बार उन्होने मुझे एक स्थान पर बुलाया जहाँ के लोगो ने बहुत माल लूटा था। उनसे वह कह रहे थे कि माल वापस कर दें। इस दृश्य को देखने के लिए मुझे उन्होने निमन्त्रित किया था। लूटा माल बाहर निकाला जा रहा था। एक स्त्री बहुत क्रोध मे कह रही थी कि आप ऐसा प्रबन्ध करें कि सिक्ख जो यहाँ आते हैं वे ऐसी जगह रखे जायें जहाँ हम उन्हे देख न सकें, क्योकि हम उनकी शकल ही देखना बरदाश्त नही कर सकते। इस पर जनाब गुलाम मोहम्मद साहब ने यह आश्वासन दिया कि ऐसा ही किया जायगा। इसके बाद जो सिक्ख आन्तरिक प्रदेशो से आते थे उनके लिए रेल वालो से ऐसा प्रबन्ध किया कि वे रेल मे ही रहे और आधी रात्रि को वे रेल से ही बन्दरगाह तक पहुँचाये जायें क्योकि वहाँ तक रेल की पटरी मौजूद थी और सीधे जहाज मे बैठा कर रवाना कर दिये जायें। कितनी ही बार १२ बजे रात्रि को इनको रवाना करने दूतावास से अपने सहयोगियो के साथ मैं भी बन्दरगाह गया।

सिन्धी हिन्दुओं का महाप्रस्थान

जैसा कि मै पहले कह आया हूँ, सिन्ध मे हिन्दुओ और मुसलमानो मे परस्पर की गाढी मैत्री और सद्भावना थी। सब की ही कौटुम्बिक और सामाजिक सस्कृति एक प्रकार की हो गयी थी। वहाँ के हिन्दू अपना घर छोड कर नही जाना चाहते थे। वास्तव मे कराची, सक्कर, लरखाना आदि नगरो मे उन्ही की सख्या अधिक थी। व्यापार वाणिज्य मे ही नही, सरकारी नौकरियो, डाक्टरी, वकालत आदि पेशो मे भी यही लोग प्रवीण थे। सिन्ध के मुसलमानो का इनके प्रति कोई घृणा या विरोध का भाव नही था। पर ६ जनवरी १६४८ के कराची के घोर आतक के बाद यह बिल्कुल भयभीत हो गये। इन्होने सोचा कि अब हमारा यहाँ रहना नही हो सकता। भारत ही हमारा देश है, और हमे वहाँ चलना चाहिए। अब सिन्ध भारत का खण्ड नही रह गया। वह विदेश ही नही, विरोधी देश हो गया है।

पूर्वी पजाब से जो मुसलमान उद्वासित होकर आये थे, उनके हृदयो मे हिन्दुओ के प्रति घोर विद्वेष था। वहाँ उन्हे काफी कष्ट पहुँचा था, और वे इसे भूल नही सकते थे। पश्चिमी पजाब मे अल्प-सख्यक हिन्दू भी त्रस्त किये गये थे, पर सब को अपनी ही चोट अधिक प्रतीत होती है। कोई यह नही सोचता कि दूसरो को भी चोट लगी है, जिसके कारण हमे कष्ट दिया जा रहा है। अपने व्यक्तिगत दु खो के सामने अन्य सबके दु ख छोटे हो जाते है। यह लोग जो पूर्वी पजाब के गाँवो से आये थे, कराची मे ही बसना चाहते थे। वे समझते थे कि उनका यह अधिकार है कि पाकिस्तानी शासन उनके योगक्षेम की हर प्रकार से चिन्ता करे और उन्हे आराम से रखे।

जो कुछ हो, सब आतरिक स्थानो से निकल कर हिन्दुओ की टोलियाँ कराची पहुँचने लगी। दौरा कर मैने विभिन्न नगरो मे

सब से कहा कि आप लोग क्यो जाते हैं। आप तो यहाँ बहुसख्यक है। आपका कौन क्या बिगाड सकता है। आप यहाँ रहे। पर वे सुनने को नही तैयार थे। दौरे मे कुछ स्थानो पर उस समय के सिन्ध के मुख्य-मन्त्री श्री खुरो भी मेरे साथ थे। वे भी उसी मंच से बोलते थे, वही भाव प्रदर्शित करते थे। पर कोई लाभ नही हुआ। मेरे उच्चायुक्तालय (हाई कमीशन) का यह कर्त्तव्य हुआ कि इन सब लोगो के लिए प्रबन्ध करे जिससे यह लोग भारत पहुँच जायें। रेल से भेजने का विचार करना व्यर्थ था। रेल की यात्रा भयावह थी। हवाई यात्रा से कितने लोग अपना असबाब लेकर जा सकते थे। समुद्र से जहाज पर ही जाना सबसे अधिक सुकर और सुविधाजनक था।

पुश्तो से बसे हुए लोग अपने घर छोड अन्य घरो की तालाश मे निकले थे। मुझे अपने काम मे श्री जमशेद मेहता, श्री नवीन खाण्डवाला और श्री मघा ठहलरमानी से विशेष सहायता मिली। श्री खाण्डवाला ने विशेषकर जहाजो का प्रबन्ध किया। यह जहाज सौराष्ट्र के ओखा बन्दरगाह जो जामनगर के राज्य मे था, या बम्बई के बन्दरगाह को जाते थे। यह जहाज ऊपर से नीचे तक यात्रियो से भरे रहते थे। मैं भी एक बार ऐसे ही यात्रियो के जहाज पर बैठ कर ओखा गया था। मैं तो प्रथम श्रेणी के केबिन (कोठरी) मे था, पर तृतीय श्रेणी और डैक पर जाने वालो की दशा बडी ही दयनीय थी। जहाज मे घूम कर मैंने अपनी आँखो उनकी करुणावस्था देखी।

पहले तो आतरिक स्थानो से आने वालो के लिए कराची मे ही ठहरने का प्रबन्ध करना पडा। यह बडा कठिन काम था। वहाँ के स्थानीय अधिकारियो से अनुमति लेकर, एक खुले मैदान मे तम्बू आदि लगाया गया। करीब २५ हजार रुपये व्यय कर वहाँ पर म्युनिसिपैलिटी का पानी का नल लाया गया और अन्य आवश्यक प्रबन्ध किया गया। अवश्य ही फौरन जहाज, नही मिल सकते थे। २-४ दिन आगतुको को कराची मे ठहरना ही पडता था। इस कारण ऐसा विस्तृत प्रबन्ध आवश्यक था। मैं सिन्धी भाई

वहिनो की वडी प्रशसा करूँगा कि यद्यपि यह अपने पुराने घरो को छोड कर अनजान जगहो पर जा रहे थे, पर वे प्रसन्नचित्त थे। इन्हे इसका पता नही था कि उन्हे कहाँ जाना होगा, और उनकी क्या गति होगी। पर यह हँस-खेल लेते थे। मैं सायकाल अक्सर इनके यहाँ जाता था। मुझे आश्चर्य होता जव मैं देखता था कि यह लोग सगीत का रसास्वादन कर रहे हैं, गा वजा रहे है, अपने को प्रसन्न रख रहे हैं। मैं सोचता था कि यह वडे ही दु खी होगे। सवसे क्रुद्ध होगे और सवको वुरा कहते होगे। दोनो तरफ के नेताओ को धिक्कारते होगे। पर ऐसी वात नही थी। इन कटको (शिवर अथवा कैम्प) मे ऐसा प्रतीत होता था कि कही स्वेच्छा से तीर्थयात्रा करने यह लोग जा रहे हैं। हमारे उच्चायुक्तालय को वडी भीड का सामना करना पडा। इसमे श्री मघा ठहलरमानी ने वहुत सहायता पहुँचायी। इसके वाद भी वे स्वय वर्षो कराची मे टिके रहे। पर अन्त मे स्थिति को असह्य पाकर वे भी चले गये।

मैंने ऊपर कहा है कि स्थानीय अधिकारियो की अनुमति लेकर ही इस कटक की स्थापना हुई थी। पर एक दिन हमे हुकम मिला कि इन यात्रियो के कारण वहुत दुर्गन्ध पैदा होती है और गवर्नर जनरल श्री जिन्ना साहव को इससे कष्ट होता है। यह भी कहा गया कि इस कटक की स्थापना विना सरकारी अनुमति के की गयी है, और यह फौरन हटा लिया जाय। जिन्ना साहव का महल (गवर्नमैंट हाऊस) हवा के रास्ते भी इस स्थान से दो मील पर था। इतनी दूर से भी इन यात्रियो की दुर्गन्ध उनको सता रही थी। मैंने कलक्टर का अनुमति-पत्र दिखलाया जिसके आधार पर ही हमने वहुव्यय कर इस स्थान को यात्रियो के रहने योग्य वनाया था। पर जव अनन्याधिकारी गवर्नर जनरल स्वय ही इन हिन्दुओ का वहाँ रहना सह नही सकते थे तो किस कलक्टर को साहस था कि वह कहता कि मैंने इस कटक की स्थापना की अनुमति दी है। हमे वहाँ से उठ जाना पडा, और यथासम्भव यात्रियो की कुशलता के लिए दूसरे प्रवन्ध करने पडे। मुझे दु ख हुआ कि उद्वासे हुए लोगो से सहानुभूति न कर, उन्हे सहायता न देकर, जिन्ना साहव ने

भी उनके कष्टो को वढाना ही चाहा ।

उच्चायुक्तालय के कार्यालय मे तो वडी भीड लगी रहती थी। उसको सम्भालना वहुत कठिन हो रहा था। सव लोग चाहते थे कि हमे यथासम्भव शीघ्र परमिट (यात्रा का आदेश-पत्र) मिल जाय। ऐसे सकट के समय यदि मनुष्य स्वार्थी हो जाय, तो कोई आश्चर्य की वात नही है। उनकी निन्दा नही करनी चाहिए। सव लोग अपनी-अपनी रक्षा के लिए आतुर थे। यथासम्भव शीघ्र भारत चले जाना चाहते थे। उच्चायुक्तालय को तो समझ कर ही काम करना पडता था। जितनो को जव विदा कर सकता था उतनो तक को ही आदेश-पत्र भी देता था। यह दु खद स्थिति भी हास्यरस की घटनाओ से शून्य न थी। एक दिन की वात है जव मैं स्वय प्रवन्ध कर रहा था, एक स्त्री ने मेरे पास आकर धीरे से कहा कि उसके कुटुम्व की अमुक स्त्री को पूरे दिन का गर्भ है। वच्चा दो चार दिन मे ही हो सकता था। इस कारण उसे पहले आदेश-पत्र दे दिया जाय जिससे वे चली जायँ। मैने ऐसा ही किया। पर मेरे सामने दूसरे ही दिन यह अद्भुत दृश्य पैदा हो गया कि वहाँ की सव स्त्रियाँ पूरे दिन की गर्भवती हो गयी। उनको यह मालूम हो गया कि उच्चायुक्त गर्भवती स्त्रियो के प्रति कुछ विशेष उदारता और पक्षपात रखते है। इस कारण सवको ही यह कहने का अवसर मिला कि हम भी उसी स्थिति मे हैं। उच्चायुक्त सवकी डाक्टरी परीक्षा तो करा ही नही सकता था। मुझे हँस कर कहना पडा कि यह सम्भव नही हे कि सव की ऐसी दशा एक ही समय मे हो। मुझे साधारण प्रकार से विना भेदभाव के आदेश-पत्र देने पर विवश होना पडा।

इस महाप्रयाण के सम्वन्ध मे कुछ और वाते कहना आवश्यक है। अपने उत्तर प्रदेश के—विशेपकर उसके पूर्वी जिलो के—वहुत से लोग पश्चिमी प्रदेशो मे काम की खोज मे वहुत दिनो से जाते रहे। अहमदावाद, वम्वई आदि नगरो मे हजारो की सख्या मे सुल्तानपुर, जौनपुर, वनारस, गाजीपुर आदि जिलो से लोग नाना प्रकार के कार्य कर अपने उदर-पालन के लिए वहाँ जाते थे।

इन लोगो को हर साल एक महीने की छुट्टी मिलती है। इसमे वे अपने गाँवो मे आकर अपने कुटुम्बी जनो से मिलते है। उनके बीबी बच्चे प्राय घरो पर ही रहते हैं। यह स्वय प्रवास मे अकेले ही रहते है और काफी कष्टो का जीवन व्यतीत करते है। जो कुछ थोडा बहुत बचा सकते है, बचा कर घर भेजते है जिससे जमीदार का लगान और महाजन का कर्ज चुकाया जा सके, और पैतृक भूमि की रक्षा हो। पाकिस्तान की स्थापना के पहले ऐसे कितने ही लोग कराची भी जाते थे।

जब इस प्रकार वहाँ से उत्तर प्रदेश के सब हिन्दू श्रमिक जाने लगे तो सरकार की तरफ से 'एसेशियल सर्विसेस् एक्ट' अर्थात् आवश्यक सेवाओ सम्बन्धी अधिनियम की धाराओ के अनुसार यह आदेश निकाला गया कि कराची मे काम करने वाले श्रमिक—मेहतर, मजदूर, नौकर आदि—बाहर नही जा सकते। मुझे बहुत बुरा लगा। मै प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ से मिला और उनसे कहा कि यह तो सदा से प्रथा चली आ रही है कि एक माह की छुट्टी मे यह लोग अपने घर जायें। उन्हे रोकना अनुचित है। नवाबजादा साहब ने इस पर मुझसे कहा कि हर साल तो यह लोग महीने भर की छुट्टी मना कर लौट आते थे, पर अब यह नही लौटेगे। इस कारण इनको रोकना आवश्यक है। मैंने कहा कि यह दलील मेरी समझ मे नही आ रही है कि यदि यह लोग अपने घर वापस जाना चाहे तो इन्हे न जाने दिया जाय। जबरदस्ती यहाँ का काम करवाया जाय। आप भी उत्तर प्रदेश के ही है। आपको तो इनसे विशेष सहानुभूति होनी चाहिए। इस पर प्रधान मन्त्री ने कहा कि यदि वे नही आवेगे तो हमारी सडको और शौचालयो को कौन साफ करेगा। तब मैंने कहा कि क्या उत्तर प्रदेश के हिन्दू लोगो को खुदा ने इसी वास्ते पैदा किया है कि वे कराची की सडके और शौचालयो को साफ करे। आपको ऐसा अन्याय नही करना चाहिए। पर कौन सुनता है। ये बेचारे रुके रह गये। जिनको मैं भेज पाता था मैं भेज देता था। बाकी का आगे चल कर क्या हुआ मै नही कह सकता।

सिन्धी हिन्दुओं की यातनाएँ

पाठकों को यह जान कर कुतूहल होगा कि ऐसी दु खद स्थिति मे भी उच्च श्रेणी के सिन्धी लोग अपनी गृहस्थी मे निम्न श्रेणी के कार्यों के लिए उत्तर प्रदेश के नौकरो और रसोईदारो पर ही आश्रित रहते थे। जब मैंने काग्रेस के एक उच्चपदस्थ सज्जन विशेष मे कहा कि आप क्यो जा रहे है, आपकी तो यहाँ बहुत मान-मर्यादा है, आप क्यो नही यही रह कर हिन्दुओ का नेतृत्व ग्रहण किये रहते और क्यो नही उनकी रक्षा करते, तब उन्होने कहा कि जब हमारे सब नौकर चले जा रहे हैं तो हम कैसे रह सकते हैं। हमारा खाना कौन पकावेगा? इस पर मैंने पूछा कि क्या आपकी स्त्रियाँ खाना पकाना नही जानती। तब वे आश्चर्य करने लगे और रुष्ट हो कर उन्होने पूछा कि 'क्या हमारी स्त्रियाँ खाना पकावेंगी?' मेरे ऐसे पुराने विचार वाले उत्तर प्रदेशीय के लिए तो यह साधारण सी बात थी क्योकि हमारे सम्पन्न घरो मे भी स्त्रियाँ खाना पकाने की कला जानती हैं। कितने ही लोग जो खाने-पीने मे बराव रखते हैं, वे बाहर के लोगो के हाथ का पकाया हुआ खाना नही खाते। स्त्रियाँ तो विशेषकर इस रूढि को मानती हैं। वे सभी खाना पकाना जानती हैं। सिन्ध मे ऐसा बराव नही रखा जाता था, और वहाँ सब लोग यह आशा किये हुए थे कि उत्तर प्रदेश से खाना पकाने वाले, झाड देने वाले और इसी प्रकार का काम करने वाले उन्हे सदा मिलते रहेगे। यह भी एक कारण हो सकता है कि जो उच्च पद पर हिन्दू लोग थे वे भी वहाँ से चले आये।

एक दूसरी बात भी ध्यान देने योग्य है। पाकिस्तान के शासन की तरफ से बडी सख्ती थी कि वहाँ से कोई हिन्दू किसी प्रकार का माल न ले जाय। बन्दरगाहो पर बहुत से कर्मचारी नियुक्त थे जो यात्रियो के सामान की तलाशी लेते थे। वे यह चाहते थे कि हिन्दू

चले जायँ पर सब माल यही छोड जायँ। मकान आदि जो अचल सम्पत्ति थी वह तो कोई ले ही नही जा सकते थे पर चल सम्पत्ति—कपडे, आभूषण आदि—भी ले जाना कठिन था। अकसर बन्दरगाह पर स्वय मै जाता था, और इन लोगो के कष्टो को देख कर बडा दु खित होता था। मुझे देख कर कर्मचारीगण कुछ सख्ती कम कर देते थे, पर वास्तव मे इन निरीह स्त्री-पुरुषो के साथ बहुत सख्ती होती थी।

इन बेचारो के साथ तो पूरी सहानुभूति करनी चाहिए थी। वे तो अपना घर छोड चले जा रहे थे और यह भी नही जानते थे कि हम कहाँ जा रहे है और हमारी क्या दशा होगी। मेरी आँखो देखी हुई बात है कि एक स्त्री ने अपनी पुरानी धोती मे नयी सुनहली पट्टी सी ली थी, जिससे उसे पहने हुए वह चली जाय। एक जबरदस्त स्त्री वहाँ पाकिस्तान सरकार की तरफ से नियुक्त की गयी थी जो स्त्रियो की तलाशी लेती थी। पहने हुए कपडो को ले जाने की कोई मनाही नही थी। पर उस निरीक्षिका ने गुस्से मे उसकी धोती से नयी सुनहली पट्टी नोच ली और कहा कि पुराने वस्त्र ले जाने की इजाजत है नये की नही। इतने मे ही मै पहुँच गया, और स्त्रियो का जो घेरा था उसके बाहर इस झगडे को मैने देखा। तब कुछ सहूलियत दी जाने लगी।

इस सम्बन्ध मे एक रसमय घटना याद आ रही है जिसका वर्णन करने की इच्छा को मैं सवरण नही कर पा रहा हूँ। एक दिन मेरे पास किन्ही स्त्री का पूर्वी पजाब से पत्र आया जिसमे उन्होने लिखा कि 'मै अपने गहने कराची के अमुक बैंक मे रख कर यहाँ चली आयी हूँ। मै उन्हे लेने आना चाहती हूँ। ठहरने के लिए मेरे पास कोई स्थान नही है। यदि आप प्रबन्ध कर दे तो बहुत अच्छा होगा।' मैंने उत्तर दिया कि 'आप आ जाइए, और मेरे उच्चायुक्तालय मे ही ठहर जाइएगा। मुझसे जो कुछ सहायता हो सकेगी, अवश्य दूंगा।' थोडे दिनो बाद एक वृद्धा स्त्री आयी। वे आयुक्तालय मे ठहरी। मैने अपने कार्यालय के एक कर्मचारी के साथ उन्हे बैंक भिजवाया। वह अपने गहने लेकर वापस आयी। एक-दो दिन बाद

उन्होने अपने कमरे से मुझे कहलवाया कि 'मैं जा रही हूँ। आपसे विदा लेना चाहती हूँ।'

मैंने चपरासी से कहा कि उनसे कहो कि यही कार्यालय मे चली आवे। मैं उस समय काम कर रहा था। उसने आकर कहा कि मेरे बैठने के कमरे (ड्राइंग रूम) मे वे हैं। वे चाहती हैं कि मैं उनसे वही मिल लूं। मैं वहाँ गया। उन वृद्धा स्त्री ने सिर से पैर तक अपने सब गहने पहन रखे थे। वह इस रूप मे कुछ लजा सी रही थी। शायद इसी कारण कार्यालय मे नही आयी। जैसा कि मैं ऊपर कह आया हूं, नियम यह था कि जो वस्तु और आभूषण पहने हुए कोई जाय तो उससे छेड-छाड न की जाय। अलग से गहनो को ले जाने की मनाही थी। मैं उनको विदा कर और शुभ कामना प्रकट कर अपने कार्यालय मे वापस आया। दूतावास के किन्ही उच्च अधिकारी को मैंने कहा कि इन्हे हवाई अड्डे पहुंचा आवे।

उनके पास सोने का एक छोटा सा टुकडा था जिसे वे पहन नही सकती थी। परेशान थी कि इसे कैसे ले जायें। यद्यपि बन्दरगाह मे बहुत सख्ती थी, पर हवाई अड्डे के अधिकारी मेरे दूतालय का बडा ख्याल करते थे। इस सम्बन्ध मे हवाई अड्डे के सीमाशुल्क (कस्टम) के कर्मचारी मिस्टर वेब के प्रति मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ कि वे बडी सहानुभूति के साथ यात्रियो से व्यवहार करते थे। मैंने कर्मचारी से कहा कि 'यदि कोई इस टुकडे को ले जाने पर रोक-टोक करे तो कहना कि यह स्त्री मेरे दूतालय से आ रही हैं। यदि इस पर भी न ले जाने दे, तो इसे वापस ले आना। जब हममे से कोई भारत जायगा तो इसको भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया जायगा।' उस स्त्री का पता मैंने लिख लिया। पीछे मालूम हुआ कि किसी ने रोक-टोक नही की, और वह सब आभूषण सहित इस सोने के टुकडे को लिए हुए चली गयी। वह अपने घर सुविधापूर्वक पहुंच गयी। वहाँ से उन्होने मुझे सूचना भी दी कि वह ठीक तरह घर आ गयी। अवश्य ही मुझे बडा सन्तोष हुआ।

हिन्दू उस समय बहुत ही भयभीत हो गये थे। कुछ धनी अपनी

सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए वहाँ ठहरने का प्रयत्न कर रहे थे। पर कभी-कभी ये अर्ध-रात्रि को मेरे पास दौड़े आते थे और कहते थे कि मुझे आदेश-पत्र फौरन दे दीजिए जिससे कि हम ऐसे हवाई जहाजों से चले जायँ जो रात को जाने वाले है। उनका कहना था कि वे दूसरे दिन गिरफ्तार कर लिए जायँगे। मैं आदेश-पत्र आदि और तत्सम्बन्धी सब सामग्री रात्रि को अपने विस्तर के पास ही रखता था जिससे कि किसी भी समय मैं ऐसे लोगो का काम कर दूं। घोर रात्रि मे अपने दफ्तर के कर्मचारियो से मुझे सहायता नही ही मिल सकती थी।

महा राज्यपाल के पद पर जिन्ना साहब

मेरा सब से पहला सरकारी पद पाकिस्तान का उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) का ही था। काम कठिन, जटिल और नाजुक था। समय और स्थिति भयावनी थी। बहुत जोश और क्षोभ फैला हुआ था। लोगो के मन मे बहुत विकार था। सौभाग्य से मैं वहाँ के सभी उच्च पदस्थ अधिकारियो को पहले से ही जानता था। गवर्नर जनरल जनाब जिन्ना साहब, प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ और अन्य मन्त्रीगण, जनाब गुलाम मोहम्मद, सर मोहम्मद जफरुल्ला खाँ, सरदार अब्दुर्रब निस्तर, जनाब चुङ्गिगर और राजा गजनफर अली खाँ सभी दिल्ली के विधान-मण्डल के मेरे समय सदस्य रह चुके थे। सबसे ही मेरी मैत्री थी। केवल एक ही केन्द्रीय मन्त्री जनाब अब्दुल रहमान को मैं नही जानता था। ये पूर्वी बगाल से आये थे। जनाब इकरामुल्ला, जवेरी आदि बड़े सचिवो को भी मैं पहले से जानता था। मेरे समय ये दिल्ली के विधान-मण्डल के सरकार की तरफ से मनोनीत सदस्य रहा करते थे।

यूरोपीय उच्चाधिकारी तो स्वराज्य होने पर प्राय सभी चले गये। एक दो के अतिरिक्त वे लोग भारत के नये रूप मे उसकी सेवा नही करना चाहते थे। नये नियमो का लाभ उठाकर काफी मुआवजा लेकर अपने घर लौट गये। जो थोड़े से रहना चाहते थे ये पाकिस्तान गये। उसी से वे सहानुभूति रखते थे। इनमे से भी बहुतो को मैं जानता था। इस कारण मेरा कार्य कुछ सरल ही हो गया। अपने जीवन के पुराने अभ्यास के अनुसार मैं प्रात काल चार-पाँच बजे तक उठ जाता था और दस बजे दफ्तर के पहले मिसलो की ढेर को देख डालता था। फिर दिन भर बहुत सी तफसील और नीति की बातो मे लगा रहता था। काफी परिश्रम करना पड़ता था। सायकाल को शराब पीने की गोष्ठियाँ

(काक-टेल पार्टियाँ) होती थी, जहाँ मै अपने साथी विदेशी राजदूतो से मिलता था। वे मुझे बहुत अच्छे लगते थे। उनका अनुभव और ज्ञान भी विस्तृत था। यद्यपि मैं शराब नही पीता था जो अपरिमित मात्रा मे आतिथेयगण अपने अतिथियो को देते थे, तथापि सबसे बातचीत करने मे मुझे बहुत आनन्द मिलता था। भारत के अंग्रेज सेनापति जनरल आकिनलेक और बूशर अक्सर कराची आते थे। कभी ये मेरे निवासस्थान पर भी आ जाते थे। अन्य स्थानो मे भी इनसे मुलाकात होती रहती थी।

इस बीच मे जिन्ना साहब से जो मेरी मुलाकात हुई उसका वर्णन रसमय हो सकता है। बम्बई और दिल्ली मे जो उनके मकान थे, उनमे उनका मन अटका रहता था। इन्ही मकानो का ही बन्धन उन्हे अपने पुराने देश से रह गया था। दिल्ली के मकान को बेचने के लिए वे सफल प्रयत्न कर चुके थे, और कुछ औपचारिक कार्यवाहियो की समाप्ति की वे प्रतीक्षा कर रहे थे। जहाँ तक उनके बम्बई के मकान का सम्बन्ध था, उसे भारत शासन ने उनके सम्मानार्थ छोड दिया था। इसके कारण शासन की बडी समालोचना होती थी और इस प्रकार के पक्षपात की लोग निन्दा करते थे। एक दिन प्रधान मन्त्री का मुझे टेलीफोन मिला जिसमे उन्होने कहा कि ऐसी स्थिति मे शासन को बडा असमजस हो रहा है। हमारे लिए आवश्यक है कि अब उस मकान को ले ले। प्रधान मन्त्री ने मुझसे कहा कि तुम जाकर जिन्ना साहब से मिलो। उनसे पूछो कि उनकी क्या इच्छा है और कितना किराया वे चाहते है।

मैंने उनके सचिव को सूचित किया कि मुझे जिन्ना साहब से मिलना है। शीघ्र ही बुलाया गया। अपनी बैठक मे वे मुझसे मिले। उनके चारो तरफ मिसलो की ढेर लगी हुई थी। मैंने प्रधान मन्त्री का सन्देशा उन्हे सुनाया। वे कुछ स्तम्भित से हो गये और बडे आग्रह से मुझसे कहने लगे—'श्रीप्रकाश, मेरा दिल मत तोडो। जवाहरलाल से कह दो, मेरा दिल न तोडे। मैंने इस मकान को एक-एक ईंट बैठाकर बनाया है। ऐसे मकान मे कौन रह सकता है। उसके कैसे सुन्दर बरामदे हे। मकान छोटा है। वह तो किसी छोटे

से यूरोपीय कुटुम्ब अथवा बहुत ही सुपरिष्कृत देशी राजा के ही रहने योग्य है। तुम नही जानते कि मै बम्बई से कितना प्रेम रखता हूँ। मैं अब भी वहाँ जाने की आशा करता हूँ।' चकित होकर मैंने कहा—'क्या वास्तव मे, जिन्ना साहब, आप बम्बई जाना चाहते हैं। मैं जानता हूँ कि बम्बई की आपने बडी सेवा की है। बम्बई आपके प्रति बहुत अनुगृहीत है। क्या मैं प्रधान मन्त्री से कह दूं कि आप बम्बई जाने की अभिलाषा रखते हैं।' उन्होंने उत्तर दिया—'अवश्य तुम ऐसा उनसे कह सकते हो।'

इतनी बातचीत के बाद मैं चला आया। प्रधान मन्त्री को इसकी सूचना दे दी। जिन्ना साहब का मकान छोड दिया गया। कुछ महीने पीछे प्रधान मन्त्री का फिर आवश्यक टेलीफोन आया जब उन्होने कहा कि 'अब शासन नही ठहर सकता, लोग बहुत अप्रसन्न हैं कि जिन्ना साहब का मकान नही लिया जा रहा है। वह खाली पडा है जब मकानो की इतनी दिक्कत हो रही है। उसे ले लेना अब आवश्यक है।' प्रधान मन्त्री ने मुझसे कहा कि 'यह सब बातें तुम उन्हे बताओ और उनसे पूछो कितना किराया चाहते हैं।' उस समय जिन्ना साहब की तबीयत अच्छी नही थी। मुझे ठीक याद नही है पर वे उस समय जियारत या क्वेटा मे थे। मैंने उन्हे पत्र लिखा। मुझे उत्तर मिला कि उन्हे किन्ही सज्जन ने तीन हजार रुपया महीना किराया देने को कहा था। उन्होने यह भी आशा प्रकट की कि किरायेदार के सम्बन्ध मे उनकी इच्छाओ का पालन किया जायगा। मकान पीछे अंग्रेज उप-उच्चायुक्त (ब्रिटिश डेप्यूटी हाई कमिशनर) को दिया गया। वे ही अब भी वहाँ रहते हैं। ऐसे पदाधिकारियो का कुटुम्ब बहुत छोटा सा ही होता है। जिन्ना साहब की इच्छाओ की पूर्ति की गयी। जहाँ तक मुझे याद आता है इसका किराया तीन हजार रुपया रखा गया और इस शर्त पर मकान दिया गया कि जब ही जिन्ना साहब अपने रहने के लिए इसे चाहेगे तब ही किरायेदार को फौरन इसे खाली कर देना होगा।

आश्चर्य की बात है कि जिन्ना साहब ने यूरोपीय कुटुम्ब और भारतीय नरेश की चर्चा की पर यह इच्छा कभी न की कि यह

मकान वे बम्बई के मुसलमानो को दे दे जिससे कि वे अपने मनोविनोद और विश्राम के लिए इसका सदुपयोग कर सके। जिन्ना साहब ने अपने मकान का जो वर्णन किया था उससे मुझे उसे देखने का बडा कुतूहल हुआ। बाद मे बम्बई के राज्यपाल की हैसियत से मुझे वहाँ जाने का कई बार अवसर मिला। अग्रेज उप-उच्चायुक्त के निमन्त्रण पर मै वहाँ के आयोजनो मे और उनका व्यक्तिगत अतिथि होकर भी कई बार गया। मकान वास्तव मे बडा ही सुन्दर है। उसके फर्श पर जो विविध प्रकार के सगमरमर लगे हुए है वे बडे ही मोहक है। उन्हे देख कर चित्त प्रसन्न होता है। मालाबार हिल पर उसका स्थान भी बहुत ही उपयुक्त है। सब वस्तुओ की बहुत फिकर की जाती है। कोई आश्चर्य की बात नही कि पाकिस्तान के गवर्नर जनरल होते हुए भी जिन्ना साहब का हृदय अपने बम्बई के मकान मे लगा हुआ था और उन्हे कराची का गवर्नमेट हाउस अधिक पसन्द नही आता था।

दिल्ली मे उनका जो दूसरा मकान था उसकी बिक्री के लिए उन्होने किन्ही से बातचीत कर ली थी। देश छोड कर जाने वालो की सम्पत्ति (ईवाकुई प्रापर्टी) के सम्बन्ध मे नये कानूनो के कारण उसकी रजिस्ट्री मे कुछ दिक्कत पड रही थी। उस पर जिन्ना साहब बहुत रुष्ट थे और मुझसे उसकी शिकायत की। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, इनके लिए विशेष अपवाद कर भारत शासन ने कुछ मास पीछे इस मकान की रजिस्ट्री के लिए अनुमति दे दी। इसकी सूचना मैने जिन्ना साहब को दी। मुझे आशा थी कि मुझे अच्छा सा उत्तर मिलेगा, पर जो उत्तर आया वह कुछ अप्रसन्नता का ही था। उन्होने कहा कि यह सन्तोष का विषय है कि जो उचित काम बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था वह आखिर कर दिया गया। इस समय तक जिन्ना साहब काफी बीमार हो चुके थे और विश्राम के लिए जियारत या क्वेटा मे रहते थे। कराची मे उनका बहुत कम रहना होता था। मुझसे सचिवो ने पहले कहा था कि जिन्ना साहब को सब मिसिलो को अपने यहाँ मगा लेने का बहुत शौक है, पर उनके यहाँ से मिसिले लौटती नही। जिन्ना साहब के

कार्य करने का प्रकार निराला ही था और सचिवालय इससे वहुत खुश नही रहता था। मुझसे भी उनकी वहुत कम मुलाकात होती थी।

गवर्नर जनरल की हैसियत से जिन्ना साहव जो भोज और उद्यान-गोष्ठियो का आयोजन करते थे उसमे वे मुझे अवश्य बुलाते थे, पर मैं उनसे अधिक वातचीत इन अवसरो पर भी नही कर पाता था। केवल एक वार उनसे वाते हुई जिसकी चर्चा मैं कर चुका हूँ।

पाकिस्तान के नये राज्य की स्थापना होने के थोडे दिन वाद वहाँ के उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) के वकीलो ने जिन्ना साहव के स्वागतार्थ आयोजन किया। वे स्वय वहुत वडे वकील थे और पाकिस्तान के तो गवर्नर जनरल ही थे। मुझे भी निमन्त्रित किया गया। अपने भाषण मे जिन्ना साहव ने कहा कि जव मैं इगलैंड गया और सोच रहा था कि वैरिस्टरी के लिए किस 'इन्स आफ कोर्ट' मे भरती होऊँ तो मै इत्तिफाक से लिकन इन पहुँचा। वहाँ के वडे फाटक के ऊपर मैंने वहुत सी मूर्तियाँ खिची हुई देखी। एक की तरफ मेरा ध्यान विशेप रूप से आकर्षित हुआ। मैंने पूछा—'यह किसकी मूर्ति है।' मुझे उत्तर मिला—'यह पैगम्वर मुहम्मद साहव की है।' इस पर मैंने कहा कि यही 'इन' मेरे लिए उपयुक्त है। जिन्ना साहव लिकन इन के वैरिस्टर थे। शताब्दियो से लन्दन मे चार सस्थाये जिन्हे 'इन्स आफ कोर्ट' कहते हैं चली आ रही है, जहाँ वैरिस्टर की शिक्षा-दीक्षा होती है। जव उन्होने यह कहानी श्रोताओ को सुनायी तो उनकी तरफ से वडी हर्षध्वनि की गयी।

मैं स्वय थोडा स्तम्भित हुआ क्योकि उस समय यह आन्दोलन हो रहा था कि कराची की सडको पर जितनी मूर्तियाँ हैं सव हटा दी जायें। लोगो का कहना था कि मूर्तियो का वनाना अथवा मनुष्यो का उन्ही के रूप मे चित्रण करना इस्लाम के विरुद्ध है। जो पुराने विचार के मुसलिम लोग होते हैं वे तो अपनी तस्वीर भी नही लेने देते। जिन्ना साहव के भाषण से मुझे आश्चर्य हुआ कि पाकिस्तान राज्य के सस्थापक पैगम्बर साहव की मूर्ति बनाने का

विरोध न कर, ऐसी सस्था से आकर्षित हुए जिसके फाटक पर इनकी मूर्ति ऐसे विशेप रूप से प्रदर्शित की गयी थी।

जिन्ना साहव को शान-शौकत का भी काफी शौक था। पाकिस्तान के बडे बैंक के समारम्भ के लिए वे जियारत या क्वेटा से कराची आये। मुझे याद नही आ रहा है कि वे उस समय कहाँ थे। हम सव विदेशी राजदूत हवाई अड्डे पर उनके स्वागत के लिए वुलाये गये। एक पक्ति मे हम खडे हुए और नियमित रूप से हम सव का उन्हे परिचय दिया गया। सायकाल को पुराने वाइसरायो की तरह राजशाही ठाठ से वे बैंक के भवन मे आये। कई घोडो की गाडी मे वे सवार थे और आगे पीछे घोडो पर चढे भाला लिए हुए अगरक्षक थे। देश के विभाजन के वाद वाइसराय के अगरक्षको का भी विभाजन हुआ। कुछ दिल्ली और कुछ कराची के गवर्नमेट हाउस मे रखे गये। जिन्ना साहव ने अपने लिए विशेप वायुयान वनवाया था। मेरी समझ मे वह वाइकाउट की श्रेणी का था। इसी मे वे चलना पसन्द करते थे। एक समय वे पूर्वी पाकिस्तान की राजधानी ढाका जाना चाहते थे। उनके सैनिक सचिव या कोई दूसरे अफसर मेरे पास आये। मुझको उसकी सूचना दी और कहा कि जिन्ना साहव भारत भूमि पर विना कही उतरे कराची से ढाका सीधे जाना चाहते है। वे चाहते हे कि भारत शासन से इसकी अनुमति मगा दी जाय।

अपने जीवन मे मैंने केवल एक ही अन्तर्राष्ट्रीय राजपत्र पर हस्ताक्षर किये है। भारत और पाकिस्तान के वीच मे वायुयान आने जाने के सम्वन्ध मे समझौते के लिए वातचीत करने का कार्य मुझे सुपुर्द किया गया था। नियम यह है कि जो हवाई जहाज नियमित रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान जाते है वे तो विदेशो के ऊपर उडते हुए विना कही रुके चले जा सकते है। पर जव कोई विशेप वायुयान अनियमित रूप से उडता है तो जिस विदेश के ऊपर से वह जाता है उस पर कही न कही उसका उतरना आवश्यक होता है। एक वार उतर कर ही वह आगे वढ सकता है। वास्तव मे पाकिस्तान का रूप वडा अद्भुत सा है। उसके दो भागो के बीच

दो हजार मील की तथाकथित विदेश को भारत भूमि पडती है। जब एक तरफ से दूसरी तरफ किसी हवाई जहाज को जाना होता है तो उसे इस भूमि के ऊपर से ही उडना पडता है। जिन्ना साहब की यात्रा विशेष जहाज पर अनियमित रूप की थी। इस कारण भारत शासन की अनुमति की आवश्यकता थी। जिन्ना साहब ने यह भी कहलाया कि यदि भारत शासन उनके अपने जहाज मे जाना पसन्द नही करता तो वे सैनिक जहाज मे जा सकते हैं। पर वे भारत मे कही उतरना नही चाहते।

मैंने अपने प्रधान मन्त्री को फौरन ही टेलीफोन से जिन्ना साहब की इच्छाओ को सूचना दी और उन्होने तत्क्षण उनको सीधे जाने की अनुमति दे दी। उन्होने जरा भी सकोच नही किया। हाँ, उन्होने मुझसे यह अवश्य कहा कि 'जिन्ना साहब से पूछ लो वे किस रास्ते से जायेंगे, जिससे कि भारत के शासन की तरफ से रास्ते मे बराबर प्रबन्ध रहे कि यदि किसी बात की कही आवश्यकता हो तो उसकी पूर्ति की जा सके।' इस सबसे स्पष्ट है कि भारत शासन और हमारे प्रधान मन्त्री की तरफ से जिन्ना साहब के प्रति व्यक्तिगत रूप से हर प्रकार की शिष्टता बर्ती जाती थी और उनकी इच्छाओ की पूर्ति कर उनका सम्मान किया जाता था। जिन्ना साहब ढाका गये और उसके बाद इस सम्बन्ध मे कोई दिक्कत न हुई। पाठको को यह जानकर कुतूहल होगा कि मैंने इस बात को याद रखा। जब मै आसाम का राज्यपाल बनाया गया तो मैंने देखा कि वहाँ पर शासन ने मेरे पूर्वाधिकारी के समय राज्यपाल को विशेष वायुयान दे रखा है जिसका मैं भी प्रयोग कर सकता था। गौहाटी (आसाम) से कलकत्ते जाने का सीधा मार्ग पूर्वी पाकिस्तान के ऊपर से ही पडता है। पहले आसाम के गौहाटी के हवाई अड्डे से पश्चिम होकर बिहार के ऊपर से वायुयान को जाना पडता था। पीछे बगाल के ऊपर के आकाश मे वह घुसता था। मैंने पाकिस्तान के शासन को लिख कर अपने जहाज के लिए भी यह सुविधा प्राप्त कर ली कि बिना कही पाकिस्तान मे उतरे मैं सीधा पूर्वी पाकिस्तान के ऊपर से होता हुआ गौहाटी से कलकत्ता जा सकूं।

नयाचार (प्रोटोकोल) की गुत्थियाँ

इंगलैंड की राजकुमारी (वर्तमान रानी) का विवाह दिसम्बर सन् १९४७ मे हुआ। भारत के उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड माउटवेटन अपनी पत्नी लेडी माउटवेटन के साथ इस विवाह के लिए इगलैंड गये। कराची मे मौरीपुर के सैनिक हवाई अड्डे पर इन्होने अपना वायुयान वदला और फौरन ही इगलैंड के लिए रवाना हो गये। मैंने उनका वहाँ पर अभिनन्दन किया। मुझे स्मरण नही कि पाकिस्तान के शासन की तरफ से कोई प्रतिनिधि उनके सम्मानार्थ हवाई अड्डे पर उस अवसर पर गये थे या नही। वहाँ पर सैनिको ने लार्ड माउटवेटन और उनके दल को अभीष्ट सहायता पहुँचायी और वे यथासम्भव शीघ्र ही रवाना हो सके। विवाह के वाद वे अपनी पत्नी और कन्या के साथ उसी रास्ते लौटे। मै उनका स्वागत करने हवाई अड्डे पर फिर गया। वे दिल्ली वापस जा रहे थे। मुझे ऐसा विचार हुआ कि वे आशा करते थे कि जिन्ना साहव उनसे मिलने आवेगे। उस समय जिन्ना साहव कराची मे नही थे। आश्चर्य की वात थी कि भारत के गवर्नर जनरल के सम्मानार्थ पाकिस्तान का कोई मन्त्री भी नही गया। उस समय पाकिस्तान के एक मात्र प्रतिनिधि जनाब आगा हिलाली थे जो पीछे दिल्ली मे पाकिस्तान की तरफ से राजदूत रहे। उस समय वे वहाँ के विदेश मन्त्रालय मे उप-सचिव थे। अपनी शिष्टता और सौजन्य के लिए ये सदा प्रसिद्ध रहे। सैनिको ने लार्ड और लेडी माउटवेटन के लिए चाय पानी का विस्तृत आयोजन कर रखा था।

जैसे ही लार्ड माउटवेटन अपने हवाई जहाज से उतरे मैने उनका अभिनन्दन किया। सैनिक अफसरो का अभिवादन स्वीकार कर वे मुझे एक तरफ ले गये। हवाई जहाज के लम्वे मार्ग पर घटे भर मुझे साथ लिए हुए ऊपर नीचे टहलते रहे। मैने उनसे वार-वार

कहा कि चलिए चाय पी लीजिए, लोग आपके लिए ठहरे हुए हैं, पर वे मुझसे बातचीत करते ही चले गये। देश के विभाजन के बाद जो समस्याएँ पैदा हुई, उन्ही के सम्बन्ध मे बातें हुईं। कश्मीर की चर्चा बराबर होती रही। इस समस्या के समाधान के सम्बन्ध मे मैंने अपनी राय उन्हे बतलायी। अभाग्यवश आज भी मेरी वही राय है। चारो तरफ बडा जोश फैला हुआ था। लार्ड माउटबेटन ने मुझसे कहा कि गवर्नर जनरली का कार्य जिन्ना साहब का नही है। जो कुछ घटनाएँ घट रही थी उन पर उन्होने दु ख प्रकट किया।

मुझे स्वय आश्चर्य हुआ कि पाकिस्तान शासन की तरफ से लार्ड माउटबेटन के स्वागतार्थ उचित प्रबन्ध नही किया गया। अवश्य ही लाड माउटबेटन को यह बात खटकी। इससे उन्हे सन्तोष नही हो सकता था। मुझे भी यह अनुचित प्रतीत हुआ कि हमारे देश के गवर्नर जनरल का समुचित रूप से सम्मान नही किया गया। मुझे याद है कि ससद मे भाषण करते हुए प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ ने भारत और पाकिस्तान की स्थिति की तुलना करते हुए कहा था कि 'भारत तो अब भी अग्रेज को अपना सर्वोच्च अधिकारी बनाये हुए है क्योकि लार्ड माउटबेटन वहाँ के गवर्नर जनरल हैं। पर देखिए पाकिस्तान ने कैसा अच्छा प्रबन्ध किया है कि उसने अपना ही गवर्नर जनरल रखा है।' इस पर सदन मे प्रशसात्मक हर्षध्वनि हुई। पाठको को स्मरण होगा कि विशेष कानून बनाया गया था जिसमे आरम्भ मे भारत और पाकिस्तान के एक ही गवर्नर जनरल नियुक्त किये जा सकते थे। मेरा निज का ऐसा विचार है कि यदि ऐसा किया जाता तो बहुत अच्छा होता। एक ही गवर्नर जनरल के अधीन दोनो राष्ट्रो मे परस्पर की कटुता कम होती, मारकाट रोकी जाती, और जो असख्य नर-नारी एक तरफ से दूसरी तरफ गये वे भी कुछ शान्ति के साथ जा सकते।

मेरा यहाँ कहना उचित होगा कि हमारे राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी इस बात का विचार रखते थे कि जब कभी किसी विदेशी राज्य के मुखिया दिल्ली आवें तो उनका समुचित सम्मान किया जाय। मुझे स्मरण है कि एक अवसर पर जब वे बम्बई मे आवश्यक

दौरा कर रहे थे तो बीच मे ही दौरे को स्थगित कर वे दिल्ली चले गये क्योकि यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो आने वाले थे। उस समय बम्बई के सयुक्त राज्य मे गुजरात सम्मिलित था। गुजरात के एक विश्वविद्यालय के वार्षिक समारोह मे वे जाने वाले थे। मुझे उन्होने अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए भेज दिया। आश्चर्य की बात है कि लार्ड माउटबेटन के कराची मे आने जाने के समय पाकिस्तान का शासन इतना उदासीन रहा। उन्ही के समय पाकिस्तान की स्थापना हुई थी। देश के विभाजन की स्वीकृति की मुहर उन्ही की थी। उन्होने स्वय बतलाया है कि यद्यपि पहले विभाजन का दिन १९४८ के जून मे निर्धारित किया गया था, उन्होने उसे आगे खीचकर अगस्त १९४७ कर दिया जब वास्तव मे विभाजन हुआ। ऐसी अवस्था मे पाकिस्तान को उनके प्रति अनुगृहीत होना चाहिए। यदि किसी को शिकायत हो सकती है तो हम भारतीयो को हो सकती है। पर मालूम नही क्यो पाकिस्तान लार्ड माउटबेटन से चिढा ही रहा। जब मैं मद्रास का राज्यपाल था और लार्ड माउटबेटन पूर्वी एशिया के दौरे पर जाते हुए मद्रास के हवाई अड्डे पर रुके थे तब उनका जहाज पश्चिमी पाकिस्तान के कुछ भाग के ऊपर से उडकर आने वाला था, पर उसे सतर्क कर दिया गया कि ऐसा वह न करे नही तो सकट की स्थिति मे पडेगा।

सिन्ध के राजनीतिक जन इस बात से बडे असन्तुष्ट थे कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे कोई सिन्धी नही लिया गया। उत्तर प्रदेश और पजाब के ही लोग उसमे भरे है, और पूर्वी बगाल के एक सज्जन आये हैं। इस सम्बन्ध मे जिन्ना साहब पर जोर डाला गया और उन्होने पीरजादा अब्दुल सत्तार को लेना स्वीकार किया। इस पर बडी प्रसन्नता व्यक्त की गयी। सिन्ध के मुख्य मन्त्री श्री खुरो ने इस शुभ अवसर के उपलक्ष मे बहुत बडा भोज दिया। अतिथियो मे मै भी था। अन्य राजदूत भी अपने कुटुम्ब के साथ आये हुए थे। इनमे अमेरिका के राजदूत और उनकी स्त्री भी थी। मैंने 'प्रोटोकोल' शब्द के सम्बन्ध मे सुना और पढा था। मै तो यही समझता था कि

दो राष्ट्रो के बीच किसी विषय विशेष के समझौते के सम्बन्ध के राजपत्र को 'प्रोटोकोल' कहते है। मैं यह नही जानता था कि भोजन के समय अतिथियो को बैठने के क्रम मे भी 'प्रोटोकोल' का कोई सम्बन्ध है। कराची मे उच्चायुक्त के पद पर स्थापित होने के थोडे ही दिन बाद यह भोज हुआ था और अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियो के समय के सामाजिक आचार से मैं पूर्ण रूप मे अनभिज्ञ था।

प्रतीत हुआ कि नियम यह है कि राजदूत केन्द्रीय मन्त्रियो के नीचे, पर प्रान्तीय मन्त्रियो के ऊपर पद रखते हैं। राजदूत के बाद उच्चायुक्त आते है। विदेशो के राजदूतो को 'एम्बासेडर' कहते हैं पर ब्रिटिश राष्ट्रसघ (कामनवेल्थ) मे सम्मिलित राज्यो के प्रतिनिधियो को उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) कहते है। एक प्रान्तीय मन्त्री, जो पीर थे—उनका पूरा नाम मैं भूल रहा हूँ—के बगल मे नीचे अर्थात् बायी तरफ मैं बैठा हुआ था। मुझे यह नही मालूम था कि मुझे उनसे ऊपर दाहिने तरफ बैठना चाहिए था। मैं उनसे बडे आनन्द से बात कर रहा था जब अद्‌भुत घटना घटी। अमेरिका के राजदूत की पत्नी मेरे पास दौडी हुई आयी और कहने लगी कि मेरा बडा अपमान हो गया। उच्च न्यायमूर्ति (चीफ जस्टिस) की पत्नी के नीचे उन्हे बैठाया गया था। इन्होने भयकर दृश्य खडा किया। वे मेरे पास क्यो आयी यह मैं समझ न सका क्योकि राजदूतो मे सबसे श्रेष्ठ स्थान उस समय बर्मा वाले का था यद्यपि उच्चायुक्त होने के नाते मैं सबसे पुराना राज-प्रतिनिधि वहाँ था। पीछे राजदूतो और उच्चायुक्तो का पद बराबर कर दिया गया। आरम्भ मे ऐसा नही था।

शान्ति की स्थापना के लिए और आतिथेय को सहायता पहुँचाने के निमित्त मैंने अमेरिका के राजदूत की पत्नी मिसेस एलिग को बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया। मैंने उनसे कहा कि 'आप ससार मे सबसे श्रेष्ठ देश के प्रतिनिधि की स्त्री हैं। हम राजदूतो के मण्डल की आप माता के रूप मे हैं।' अपने हास्यरस की प्रेरणा को न रोक सकने के कारण मैंने यह भी कहा कि 'जब हम सब को एक ही प्रकार का भोजन मिलता है तब हमे इसकी क्या चिन्ता

करनी चाहिए कि हमे कहाँ बैठाया जाता है।' उन्होने मुझे इन साधुभावो और वाक्यो के लिए धन्यवाद तो दिया पर वे बहुत ही क्रुद्ध थी। उनको शान्त करना सम्भव न था। खैर किसी प्रकार से समझौता हुआ। उनसे बडी क्षमायाचना की गयी। पीछे विदेश मन्त्रालय से हम सबको सूचना मिली कि या तो हम 'बूफे' प्रथा के अनुसार भोज दे जिसमे किसी के लिए बैठने का कोई स्थान सुरक्षित नही रहता और उद्यान गोष्ठी की प्रथा के अनुसार लोग खडे-खडे भोजन करते है, या विदेश मन्त्रालय से किसी 'प्रोटोकोल' के अफसर को बुला लेना चाहिए जो समुचित प्रकार से अतिथियो के बैठने का क्रम निर्धारित कर दे। आगे आने वाले वर्षो मे इस 'प्रोटोकोल' के मामले से मेरा बहुत सम्बन्ध रहा। एक बार प्रधान मन्त्री ने कह डाला कि ऐसा मालूम होता है कि 'प्रोटोकोल' के सम्बन्ध मे श्रीप्रकाश को बहुत विचार रहता है। मै अपना प्रथम कटु अनुभव भूल न सका, इस कारण वास्तव मे मै इसकी बडी चिन्ता रखता था। आश्चर्य की बात है कि ऐसा भेदभाव लोकतन्त्र मे किया जाता है।

मुझे तो बाल्यावस्था से ही अपना पुरातन प्रकार से परिचय था जब अतिथिगण जैसे-जैसे आते थे भोजन पर बैठते जाते थे। मेरे लिए यह कराची वाला अनुभव बडा विस्मयकारी था। मै अब भी समझता हूँ कि हमारे देश की प्रथा अधिक अच्छी है। तथाकथित लोकतन्त्र और समाजवाद मे मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिक अन्तर माना जाता है, यद्यपि कहने को वह सब मनुष्यो को बराबर मानता है। हमारी प्रथा से कही अधिक जातिभेद की भावना इसमे है। हम तो सब मनुष्यो को मनुष्य मानते है। उनकी मनुष्यता को स्वीकार करते है। पर हम सबको बराबर नही मानते क्योकि वास्तव मे सब लोग बराबर नही है।

मुझे स्मरण है कि जब राजदूतो (एम्बासेडरो) और उच्चायुक्तो (हाई कमिशनरो) को बराबर का पद दिया गया तो मुझे सबसे ऊँचा पद मिल जाता क्योकि राज-प्रतिनिधियो मे मै ही सबसे पहले कराची पहुँचा था। मै उनका मुखिया (डीन अथवा डोयन) माना जाता और कितने ही राजदूत जो मुझसे ऊँचे थे मेरे नीचे हो

जाते। विदेश मन्त्री सर मोहम्मद जफरुल्ला कुछ परेशान हुए। हमारे प्रधान मन्त्री ने भी यह इच्छा प्रकट की कि मैं अपना उच्च स्थान पाने पर जोर दूं। पर मैं तो इस भीषण स्थिति मे शान्ति ही चाहता था और मैं डरा कि ऐसा करने से परस्पर का मनोमालिन्य हो सकता है। मैंने सर मोहम्मद जफरुल्ला से कहा कि मेरे सम्बन्ध मे वे चिन्ता न करें और जैसा प्रबन्ध है वैसा रहने दें। जब मैं चला जाऊँगा तो मेरे उत्तराधिकारी नये होने के कारण बहुत पीछे के समझे जायेंगे और सब दिक्कतें स्वत ही दूर हो जायेंगी। इस प्रकार से इस समस्या का हल सरलता से हो सका। विदेश मन्त्रालय भी सुख की नीद सो सका।

भारत और पाकिस्तान के परस्पर मतभेद की सबसे पहली समस्या मेरे सामने रेल के डब्बों की आयी। इसमे मैंने अपने शासन के विरुद्ध पाकिस्तान का पक्ष लिया क्योंकि मैंने समझा कि जो करीब ५० डब्बे हमारी तरफ रोक लिए गये हैं, वे पाकिस्तान के हैं, और उनके न मिलने के कारण पाकिस्तान के रेल के कार्य मे बाधा पड रही है। मुझे काफी लडना पडा। प्रधान मन्त्री इस मामले मे स्वय पडे। उन्होंने देखा कि मै ठीक बात कह रहा हूँ। उन्होंने रेल मन्त्री से कहा कि यदि ये डब्बे पाकिस्तान को नही दिये जाते तो श्री प्रकाश स्तीफा दे देंगे। तब यह समस्या हल हुई। पाकिस्तान के यातायात के मन्त्री सरदार अब्दुर्रब निश्तर स्थिति पर बडे क्रुद्ध थे और एक उद्यान-गोष्ठी मे मेरी तरफ सकेत करते हुए उन्होंने अपने सचिव जुबेरी साहब से कहा कि ये लोग पाकिस्तान के साथ कभी भी न्याय नही करेंगे। मुझसे कहा कि 'तुमको जानना चाहिए कि पाकिस्तान ने अपने को भारत से मिला नही दिया है (भारत के पक्ष मे "आप्ट" नही किया है)।' उन दिनो 'आप्ट' शब्द का बहुत प्रयोग होता था। जुबेरी साहब स्वय जानते थे कि मैं उनके लिए कितना परिश्रम कर रहा हूँ। अपने मन्त्री की अशिष्टता पर उन्हे दु ख हुआ। मुझसे क्षमा याचना करने लगे। मुझे इसकी कोई चिन्ता न हुई।

मै तो यही चाहता था कि जब विभाजन हो गया है तो परस्पर

की शान्ति और सद्भावना बनी रहे। खेद है कि आज भी यह सब उतनी ही दूर है जितनी आरम्भ मे थी। कामकाज शीघ्रता से समाप्त करने के लिए मै स्वय सचिवो के यहाँ चला जाता था। अन्यो से भी मिलता-भेटता रहता था, यद्यपि मेरे दफ्तर वालो को यह शिकायत थी कि मै अपने उच्चायुक्त के पद के मान को ठीक तरह नही बनाये हूँ, सब जगह स्वय चला जाता हूँ। दिल्ली की विधान-सभा की परस्पर की मैत्री ने मेरा काम सरल कर दिया था। मुझे 'प्रोटोकोल' की फिकर नही थी। मुझे तो परस्पर की मैत्री और सद्भावना को बढाने की ही अभिलाषा थी। वास्तव मे वे दिन बड़े कठिन और कठोर थे।

साम्प्रदायिक दुर्व्यवहार की शिकायते अनन्त थी। पाकिस्तान मे शिकायत होती थी कि भारत मे मुसलमानो के प्रति बडा दुर्व्यवहार हो रहा है। भारत मे शिकायत होती थी कि पाकिस्तान मे हिन्दुओ को बडा सताया जा रहा है। मैने अपना कर्तव्य समझा कि पाकिस्तान मे हिन्दुओ की रक्षा की फिकर करूँ और भारत सरकार को सूचना देता रहूँ कि भारत के मुसलमानो के सम्बन्ध मे पाकिस्तान मे कैसी भावनाएँ फैली हुई है। एक अवसर पर मैने सुना कि सिन्ध मे किसी स्थान पर हिन्दुओ के साथ दुर्व्यवहार हुआ है। मैने विदेश मन्त्रालय को ठीक हाल जानने के लिए पत्र लिखा। मेरे पास कठोर भाषा मे उत्तर आया कि 'यह हमारे घर का मामला है, तुमको इसमे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही है।' इसके उत्तर मे मैने लिखा कि 'जो आपने वैधानिक स्थिति बतलायी है वह बिल्कुल ठीक है। ऐसा होते हुए भी मै पाकिस्तान के विदेश मन्त्रालय से आग्रह करता हूँ कि यदि वे कभी सुने कि भारत मे किसी स्थान पर मुसलमानो के साथ दुर्व्यवहार हो रहा है तो वे मुझे बिना सकोच लिखे और मै विश्वास दिलाता हूँ कि मै यथासम्भव पूरी तरह अवश्य पता लगा कर वास्तविक बाते बतलाऊँगा।' इस पत्र-व्यवहार का अच्छा प्रभाव पडा। यद्यपि कोई व्यवहारिक लाभ नही हुआ पर हमारा परस्पर का सम्बन्ध अच्छा हो गया। पूछ-ताछ के सम्बन्ध मे अब कोई आपत्ति नही की जाती थी और मुझसे

स्वय कई वार भारत के मुसलमानो की स्थिति के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ की गयी और अनुसन्धान के वाद जो सूचना मुझे मिलती थी, अधिकारियों के पास पहुँचा देता था। प्रधान मन्त्री नवावजादा लियाकत अली खाँ स्वय भी अकसर मुझसे पूछा करते थे। वे वास्तव मे वडे सज्जन पुरुष थे और मैत्री भाव मे मुझसे वहुत सी वाते करते रहते थे। भारत स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त ने तो मेरा वडा सम्मान किया जव उन्होने कुछ मित्रो मे यह कहा कि श्रीप्रकाश पाकिस्तान मे भारत के उच्चायुक्त ही नही है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारत मे भी पाकिस्तान के उच्चायुक्त वे ही है। मनुष्य होने के नाते यह सुन कर मुझे अवश्य वडा सन्तोष हुआ। वास्तव में इस वात की चर्चा इस कारण उठी कि मैने भारत स्थित कुछ मुसलमान घरानो के विवाह के सम्बन्ध मे पाकिस्तान मे चले आये हुए कुटुम्बो की सहायता करने का प्रयत्न किया।

पाकिस्तान के आरम्भिक शासक

पाकिस्तान के अपने प्रथम मन्त्रिमण्डल मे गवर्नर जनरल की हैसियत से जिन्ना साहब ने कुल छ. सदस्य लिए थे। इनमे से पाँच तो वे थे जिन्हे सयुक्त भारत के वाइसराय के मन्त्रिमण्डल मे देश के विभाजन (१९४७) के ठीक पहले जिन्ना साहब ने मुसलिम लीग के प्रतिनिधि के रूप मे रखवाया था। छठवे मन्त्री पूर्वी बगाल के थे। सर मोहम्मद जफरुल्ला आरम्भ मे इसमे नही थे। मुझे याद है कि भारत सरकार काफी असमजस मे पडी थी जब ये न्यायाधीश होते हुए भी भोपाल के नवाब के कानूनी सलाहकार हो गये थे। विभाजन के समय यह शायद किसी हैसियत से राष्ट्रसघ मे गये हुए थे। पाकिस्तान की स्थापना के कुछ ही दिन पीछे ये विदेश से कराची आये। मुझसे इनकी मुलाकात शावान साहब के यहाँ हुई। ये दिल्ली की विधान सभा मे मेरे समय सदस्य थे। मैं इन्हे तब से जानता था। जफरुल्ला साहब के यह मित्र थे। जफरुल्ला साहब स्वय स्थिति से प्रसन्न नही थे। सोफा पर बैठे हुए हम दोनो बातचीत कर रहे थे। उन्होने मेरे हाथ को अपने हाथ मे रखकर बडे प्रेम से बाते की और देश की स्थिति पर बडा दुख प्रकट किया। वे उस समय भोपाल जा रहे थे। मैने उनसे पूछा—'आप किसी भारतीय नरेश के कानूनी सलाहकार कैसे हो सकते थे जब आप फेडरल कोर्ट के न्यायाधीश थे।' उन्होने उत्तर दिया कि 'ऐसा करने के लिए साहस चाहिए जो मुझमे पर्याप्त मात्रा मे मौजूद है। मेरे निर्णय पर कोई आपत्ति नही उठा सकता।'

सर मोहम्मद जफरुल्ला राष्ट्रसघ मे पाकिस्तान के प्रतिनिधि कई बार रहे। वे हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे न्यायाधीश रह चुके है। राष्ट्रसघ की साधारण सभा मे अध्यक्ष होने का भी आपको सम्मान मिल चुका है। वे फिर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे लम्बी

अवधि के लिए न्यायाधीश नियुक्त हुए हैं। भारत में यह उन्न में उच्च प्रबन्ध सम्बन्धी (एक्जीक्यूटिव), विधान सम्बन्धी (लेजिस्लेटिव) और न्याय सम्बन्धी (जुडीशियल) पदों पर रह चुके हैं। राज्य के ये ही तीन अंग माने जाते हैं। केन्द्रीय विधान सभा की मेरी सदस्यता के समय ये एक के बाद एक व्यापार मन्त्री, रेलवे मन्त्री और कानून मन्त्री रहे, और सभा के नेता भी नियुक्त किये गये। पीछे ये फेडरल कोर्ट के न्यायाधीश हुए। ये बड़े ही योग्य पुरुष हैं। जो कोई शासन विभाग उन्हें दिया जाता है, उसकी सब तफसीलें ये शीघ्र ही जान लेते हैं। व्यंग बोलने का उन्हें बड़ा शौक है, और दूसरों की बुद्धि के सम्बन्ध में उन्हें तिरस्कार की भावना रहती है। उन दिनों विधान-सभा में मेरा और उनका काफी संघर्ष रहता था, पर हम अपनी निजी दोस्ती बनाये रहे।

मुझे याद है कि सन् १९३९ में पाकिस्तान की स्थापना के प्रस्ताव पर मुझसे इनकी बातें हुई थीं। उस समय उन्होंने कहा था कि जिन्ना तो मूर्ख है। यदि पाकिस्तान की स्थापना हुई तो इससे हिन्दुओं से अधिक मुसलिमों को हानि पहुँचेगी। जब कराची में मुझसे उनकी पहली मुलाकात हुई तो मैंने उस वार्तालाप की याद उन्हें दिलायी। आठ वर्ष तब से बीत चुके थे। मैंने उनसे पूछा—'अब आप विभाजन के सम्बन्ध में क्या कहते हैं।' उन्होंने उत्तर दिया—'आज भी मेरा वैसा ही विचार है।' पीछे वे पाकिस्तान के विदेश मन्त्री हो गये, और इस सम्बन्ध में मेरा उनका बहुत सम्पर्क रहा। मैं यह तो नहीं कह सकता कि जफरुल्ला साहब से मेरा सम्बन्ध रुचिकर था पर सामाजिक स्तर पर हमारा सम्बन्ध अच्छा ही था। भोजन पर जब उनसे मुलाकात होती थी तब सरकारी मामलों में मतभेद का कोई आभास नहीं मिलता था। मेरे लिए सम्भवतः यह कह देना उचित होगा कि यद्यपि वे बड़े आस्तिक मुसलमान थे पर पाकिस्तान में वे लोकप्रिय नहीं थे, क्योंकि वे कादियानी अथवा अहमदिया सम्प्रदाय का अपने को मानते थे। एक बार सरदार अब्दुर्रब निश्तर ने मुझसे कहा था कि कादियानी लोग तो मुसलमान ही नहीं हैं। मुसलिम शास्त्रों की मुझे कोई जानकारी न होने के कारण मैं नहीं

कह सकता कि दोनो सम्प्रदायो मे क्या भेद है। पर मैं यह अवश्य देखता था कि साधारण मुसलमान इनका पक्ष नही लेते थे। इस्लाम पर इनके भाषणो मे मैं गया। इनकी विद्वत्ता और पैगम्बर साहब और उनके सम्प्रदाय पर इनकी निष्ठा मे मै बहुत प्रभावित हुआ।

पुराने समय मे वाइसराय की प्रबन्ध-परिषद् (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) मे जब ये कानून सदस्य (लॉ मेम्बर) थे तब विविध विधेयको (बिलो) पर निर्वाचित विशिष्ट समितियो (सलेक्ट कमेटियो) की बैठको के यह अध्यक्ष हुआ करते थे। ऐसी एक बैठक मे हम काग्रेस सदस्यो ने किसी विधेयक मे बहुत से सशोधन प्रस्तावित किये। बैठक समाप्त होने पर इन्होने मुझसे कहा—'आप काग्रेसजन बडे परिश्रम से अध्ययन करते है।' इस पर मैने उत्तर दिया—'हम लोग तो इसी के लिए यहाँ भेजे गये है।' तब इन्होने कहा—'मुसलिम लीग के तो सदस्यगण ऐसा नही करते। वे भी तो इसी के लिए आये है।' यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि जितने मुसलिम सज्जन उच्च पदो पर रहे, वे सब पाकिस्तान की स्थापना की योजना के ही विरुद्ध थे। सर अब्दुल रहीम, सर मिर्जा इस्माइल, सर सुलतान अहमद नवाब साहब छतारी सबसे मेरी बाते हुई थी। सभी आरम्भ से ही देश का विभाजन कर पृथक् पाकिस्तान राज्य की स्थापना का विरोध करते थे। तिस पर भी पाकिस्तान स्थापित हो ही गया। बिना इसका अर्थ और परिणाम समझे हुए ही अधिकतर मुसलिम जनता इसके पक्ष मे हो गयी।

पाकिस्तान के प्रथम प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खॉ बडे ही सुसस्कृत सज्जन थे। उनसे मिल कर सदा ही आनन्द होता था। वे मेरी ही तरह उत्तर प्रदेश के थे। उन्हे मैं पहले से ही जानता था। प्रान्तीय विधान-परिषद् के वे उपाध्यक्ष बहुत दिनो तक थे। उनसे मै कितनी ही बार पहले मिल चुका था। जब वे केन्द्रीय विधान-सभा के सदस्य हुए, तब मुझे अधिक निकट से उनका परिचय मिला। जिन्ना साहब के वे दाहिने हाथ थे। पाकिस्तान की स्थापना के लिए बडे प्रयत्नशील थे।

उन्होने मेरी नियुक्ति पर बड़ा हर्ष प्रकट किया। उन्होंने कहा—'मुझे पूरी आशा है कि हमारा परस्पर का सम्बन्ध अच्छा रहेगा, और हम साथ मिलकर काम कर सकेंगे।' वास्तव मे मेरा उनका सम्बन्ध बराबर अच्छा ही बना रहा। उन्होने मेरे पिता डाक्टर भगवान् दास को पत्र भी लिखा कि 'मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि ये पाकिस्तान मे भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।' भारत से जो विशिष्ट मुसलिम जन पाकिस्तान गये, उन सब की सम्पत्तियाँ भारत मे रही। एक दिन बेगम लियाकत अली ने मुझसे कहा कि 'यदि सम्भव हो तो मुजफ्फरनगर वाली मेरी सम्पत्ति के सम्बन्ध मे कुछ आप जानकारी प्राप्त कर मुझे स्थिति बतलावे।' मैंने पता लगाया। जिस दिन भारत से इस सम्बन्ध मे उत्तर आया उसी दिन नवाबजादा साहब की किसी चाय-पार्टी मे मुझसे मुलाकात हो गयी। मुझे यह नही मालूम था कि बेगम साहिबा ने बिना उनके जाने ही सम्पत्ति की चर्चा मुझसे की थी। जो उत्तर भारत से मेरे पास आया था उसे मैंने उनको बतलाया। उन्होने सुनी अनसुनी कर दी। मुझे आज याद नही हैं कि मामला क्या था और क्या उत्तर मुझे मिला था। पीछे बेगम साहिबा को भी मैंने पार्टी मे देखा। मैं उनके पास गया और भारत सरकार का उत्तर उन्हे दिया। मैंने यह कहा कि 'नवाबजादा साहब को भी मैने बतलाया पर वे अन्यमनस्क रहे। इस पर बेगम साहिबा ने मुझसे कहा कि 'नवाब साहब ऐसे मामलो की कुछ परवाह नही करते। सब भार और परेशानी तो मुझे उठानी पड़ती है।' पीछे नवाबजादा साहब ने मुझसे कहा कि 'जब कोई किसी बड़े लक्ष्य के लिए कार्य करता है तो कष्ट उठाने और हानि सहने के लिए तो उसे तैयार रहना ही चाहिए।' यह भावना सर्वथा स्तुत्य है। अपनी सम्पत्ति के बारे मे उन्होंने कभी भी एक शब्द मुझसे नही कहा, न वे पूछ-ताछ करने के लिए ही कहते थे, न किसी प्रकार की शिकायत ही करते थे।

वास्तव मे वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके बारे मे मैं ऐसा कह सकता हूँ। अपने दिल्ली और बम्बई के मकानो के सम्बन्ध मे जिन्ना साहब को जो परेशानी थी उसके बारे मे मैं लिख चुका हूँ। सर

मोहम्मद जफरुल्ला साहव अपने कादियान के मकान के सम्बन्ध मे भी वडे चिन्तित थे। मुझसे उन्होने कहा कि 'मकान वडा सुन्दर है और मै स्वय अच्छे भवनो को पसन्द करता हूँ'। मुझसे उन्होने यह भी कहा कि उन्हे समाचार मिला है कि मकान विल्कुल नष्ट कर दिया गया है। मैने फौरन ही पजाव के राज्यपाल श्री चन्दूलाल त्रिवेदी और मुख्य मन्त्री डाक्टर गोपीचन्द्र भार्गव को लिखा और उनसे पूछा कि वास्तव मे स्थिति क्या है। उनका उत्तर आया कि 'मकान विल्कुल सुरक्षित है। उसको किसी प्रकार की हानि नही पहुँची है'। उन्होने यह भी लिखा कि 'यदि सर मोहम्मद जफरुल्ला चाहे तो स्वय उसे देख सकते है या किसी को भेज कर जॉच करा सकते है'। मैने यह सव वाते जफरुल्ला साहव को वतलायी। मुझे वडा आश्चर्य हुआ जव उन्होने कहा—'हॉ, हॉ, यह सव मै जानता हूँ। दिल्ली की विधान सभा मे जिस तरह मै तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर देता था उसी तरह तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दे रहे हो'। इस वार्ता से मै स्तम्भित हो गया। मै तो जो सत्य वात थी वही कह रहा था। वाइसराय की प्रवन्ध-परिपद् के सदस्य की हैसियत से वे क्या कहते थे यह तो वही जानते हे। इस सव से यह अनुमान किया जा सकता है कि भारत के उच्चायुक्त को पाकिस्तान के विदेश मन्त्री से परस्पर विश्वास का सम्वन्ध रखना सरल नही था।

पाकिस्तान के वित्त मन्त्री सर गुलाम मोहम्मद मेरे अच्छे मित्र थे। दिल्ली के विधान-सभा के दिनो से मै उन्हे अच्छी तरह जानता था। वे सहृदय पुरुप थे और वित्त सम्वन्धी समस्याओ के विशेपज्ञ थे। वे पीछे पाकिस्तान के गवर्नर जनरल हुए और उनको सर्वसाधारण ने 'मोहाफिजे मिल्लत' (जनता के रक्षक) की उपाधि दी। ये वरावर रुग्ण रहा करते थे। इनकी मृत्यु भी जल्दी ही हो गयी। मेरा इनका परस्पर का सम्बन्व वडा मैत्रीपूर्ण रहा। हम दोनो अक्सर ही मिला करते थे। इन्हे पाकिस्तान से यह वडी शिकायत की कि वहॉ पान नही होता। मेरी नगरी काशी उत्तम से उत्तम पान के लिए सदा से प्रसिद्ध रही है। मै स्वय पान का बहुत कम प्रयोग करता हूँ, पर मै सरलता से इसे उनके लिए मँगा

सकता था। मेरे भेजे हुए पान के पार्सल ये बडे प्रेम से ग्रहण किया करते थे।

सन् १९४८ मे दो भारत-पाकिस्तान सम्मेलन हुए—एक कलकत्ता मे और एक कराची मे। कलकत्ते मे पाकिस्तान मण्डल के मुखिया सर गुलाम मोहम्मद थे। मैं उन्ही के साथ कलकत्ते गया। कलकत्ते से वे चिटगाँव और ढाका गये। उनके आग्रह करने पर मैं भी उनके साथ गया। हमारे मण्डल के मुखिया श्री के० सी० नियोगी थे। वे उस समय केन्द्र मे शरणार्थी सम्बन्धी विभाग के मन्त्री थे। कराची के सम्मेलन मे पाकिस्तान मण्डल के मुखिया जफरुल्ला साहब थे। हमारे नेता श्री गोपालस्वामी ऐयगर थे। दोनो ही सम्मेलन निरर्थक सिद्ध हुए। दोनो पक्ष एक दूसरे की शिकायतो मे भरे हुए थे। वास्तव मे कोई समझौते के लिए तैयार नही प्रतीत होता था। ठीक वे ही शिकायत एक पक्ष की दूसरे पक्ष के विरुद्ध थी, जो दूसरे पक्ष की पहले पक्ष के विरुद्ध थी। दोनो के अभियोग-पत्र मे 'पाकिस्तान' के स्थान पर 'भारत' और 'भारत' के स्थान पर 'पाकिस्तान' लिख देना पर्याप्त था क्योकि शिकायते हूबहू एक सी थी। पूर्वी पाकिस्तान के मुख्य सचिव श्री अहमद ने कलकत्ता सम्मेलन मे कहा कि 'मैं तो अभियोक्ता होकर आया था पर यहाँ स्वय अभियुक्त हो गया'। दोनो ही सम्मेलनो का वातावरण बडा आतकमय था। स्थिति वैसी ही अब भी बनी हुई है। अभी हाल मे भारत ने पाकिस्तान के चार वायुसेना के अफसरो पर भेदिया होने का दोष लगाया। पाकिस्तान ने फौरन ही ठीक उसी पद के चार भारतीयो पर वही दोष लगाया। फिर भारत ने तीन पाकिस्तानियो को अनुचित कार्रवाइयाँ करता बताया। पाकिस्तान को भी वैसे ही तीन मिल गये। दृश्य पर हँसी आती यदि वह हमे रुलाती न।

ढाका मे मैं जब बाहर जाता था, तो मेरे साथ बहुत से सशस्त्र अग-रक्षक एक लम्बी कतार मे मोटर गाडियो पर मेरे आगे पीछे चलते थे। मुझे आश्चर्य होता था। जब मैं यह कहता था कि मुझे ऐसा प्रदर्शन नही चाहिए तो मुझसे कहा जाता था कि बिना इतने रक्षको के आपको सार्वजनिक सडको पर हम निकलने नही दे सकते।

ये आपके सम्मानार्थ जाते है। मुख्य मन्त्री ख्वाजा नाजिमुद्दीन का मै अतिथि था। किसी समय वे सयुक्त बगाल के मुख्य मन्त्री रह चुके थे। ये भी सम्मेलन के लिए कलकत्ता आये थे। उन्होने मुझसे कहा कि जब वे कलकत्ता आते है तो अपने को भूल जाते है। कलकत्ते मे वे वडे प्रसन्न रहते है। उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि हम घर पर है। कलकत्ते के होटलो मे वे बडे आदरणीय आगतुक माने जाते थे।

ढाका मे मै वकीलो की समिति (वार असोसियेशन) मे भी गया। उस समय वहाँ पर बहुत से हिन्दू वकील थे। पर सभी वहाँ से चलने के लिए तैयारी कर रहे थे। पुरानी दिल्ली की विधान-सभा के कई सहयोगी मुझे मिले। काशी के मित्रो की पुत्रियाँ भी मिली जिनका विवाह वहाँ हुआ था। रामकृष्ण सेवाश्रम मे भी मैं गया। लोग मुझे वहाँ के आसपास के गाँवो मे भी ले गये। हिन्दू ग्रामीण स्त्री-पुरुष अपने काम मे वहाँ व्यस्त थे। ऐसा नही प्रतीत होता था कि वे अपने को भारत से पृथक् अनुभव कर रहे है। कलकत्ता सम्मेलन के सम्बन्ध मे यह कह देना भी उचित होगा कि जब कराची से हमारे वायुयान देर कर रात्रि के समय दिल्ली पहुँचे तो दिल्ली सचिवालय के लोगो ने पाकिस्तानी सचिवो का वडे प्रेम से स्वागत किया। कितने ही लोग गले-गले मिले। ऐसा प्रतीत होता था कि विछुडे हुए प्रेमी भाई वहुत दिनो के बाद मिल रहे है और एक दूसरे को देख कर प्रफुल्लित हो रहे है। मेरे मन मे तो यह आश्चर्यपूर्ण प्रश्न बराबर वना रहा और रहेगा कि देश का विभाजन ही क्यो हुआ ? हिन्दू और मुसलमानो मे कोई व्यक्तिगत शत्रुता नही थी। सामूहिक रूप से भी वे शान्तिपूर्वक अपना-अपना व्यवसाय करते थे। देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन मे ताने वाने की तरह गुथे थे। सम्भव है भविष्य मे विद्वान् इतिहासज्ञ इसकी खोज करें।

महात्माजी की हत्या की भूमिका

मेरे सार्वजनिक जीवन का सबसे दु खद वर्ष सन् १९४८ का था जब मैं पाकिस्तान मे भारत का उच्चायुक्त (हाई कमिशनर) था और कराची मेरे कार्य का केन्द्र रहा। जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे अधिकाधिक दु खद घटनाएँ ही होती रही। ६ जनवरी की हत्याओ और लूट की कहानी मैं कह चुका हूँ। भारत जाने के लिए आतरिक स्थानो से आये हुए सिक्खो की हत्या हुई और करीव दो करोड की हिन्दुओ की सम्पत्ति लुटी और वर्वाद की गयी। इसके वाद सिन्ध के हिन्दुओ ने भारत चला जाना तय किया। प्रदेश की आवादी चालीस लाख की थी। उसमे पन्द्रह लाख हिन्दू थे। भारतीय उच्चायुक्तालय के कर्मचारियो का दिन रात यही काम था कि इन हिन्दुओ को सुरक्षा के साथ भारत पहुँचाने का प्रवन्ध करें। स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी चले जा रहे थे। स्थिति गम्भीर थी पर उसका सामना करना ही था।

उसी समय समाचार आने लगे कि महात्मा गाधीजी के प्राण कुछ सकट मे हैं। ऐसे कुछ आततायी पैदा हो गये हैं जो चाहते है कि वे ससार से उठ जायँ। यह दु ख की वात है कि यद्यपि गांधीजी ने अनुभव किया कि 'अब मेरी वात कोई नही मान रहा है', तथापि वे इस आशा से कि 'सम्भवत मैं इस स्थिति मे भी देश के हित के लिए कुछ कर सकूँ', सार्वजनिक कार्यो मे वरावर रस लेते रहे। इससे उनके विरोधियो के दुर्भाव और भी दृढ हो गये। मैं तो ऐसा ही विचार करता हूँ कि ससार के वडे से वडे हितैषियो के जीवन मे भी ऐसा समय आता है जब उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। एक प्रकार से पृथ्वी ही उनके पैर के नीचे से सरक जाती है। दूसरे लोग आकर दूसरे विचारो का प्रचार करते है और पृथक् रूप से आचरण भी करते हैं। देश के सचालन का कार्य ये उठा लेते है।

महापुरुषो को भी चाहिए कि वे इस वस्तुस्थिति को माने और समझें, और ससम्मान स्वय ही पृथक् हो जायँ। हमारे पूर्व पुरुषो ने जो व्यक्तिगत जीवन के लिए आश्रम की व्यवस्था की थी उसका यही अर्थ है।

अपनी मृत्यु के सत्ताइस दिन पहले उन्होने मुझसे स्वय कहा था कि 'मेरा तो सारे जीवन का कार्य मिट्टी मे मिल गया'। साम्प्रदायिक एकता के लिए उन्होने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी और साम्प्रदायिक आधार पर देश का विभाजन उनके हृदय पर लगातार आघात पहुँचा रहा था। उस समय भी वे यही विश्वास करते थे कि 'सम्भवत मैं अब भी कुछ कर सकूँ जिससे स्थिति सम्भले।' मुझे स्मरण है कि दो पारसी मित्र कराची आये थे जो जिन्ना साहब के लिए गाधीजी का सन्देशा लाये थे कि गाधीजी जिन्ना साहब से मिलना चाहते है। जहाँ तक मुझे याद पडता है, बहुत यत्न करने पर भी ये लोग जिन्ना साहब से नही मिल सके। जिन्ना साहब बहुत कम लोगो से मिलते थे। उनसे मिलना कठिन था। मेरी इन मित्रो से बराबर मुलाकात होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे साधिकार बतला दिया गया कि जब तक गाधीजी स्वय अपने को भारत का गवर्नर जनरल नही बना लेते, तब तक जिन्ना साहब उनसे नही मिल सकते। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि गाधीजी चाहते तो वे भारत के गवर्नर जनरल बडी सरलता से हो सकते थे। सारा देश ही उन्हे बडे उत्साह और उल्लास से इस पद पर बैठाता।

जिन्ना साहब की तरफ से लोगो का पहले यही विश्वास था कि वे किसी पद को भी नही लेंगे। बम्बई मे ऐसे लोगो ने मुझसे कहा है जो जिन्ना साहब को अच्छी तरह जानते थे कि वे कोई सरकारी पद नही ही लेना चाहते थे। स्वतन्त्र नागरिक की ही तरह वे सार्वजनिक क्षेत्र मे रहना चाहते थे। उनकी स्त्री को आजीवन इस बात का दु ख रहा कि उनके पति पदो से विमुख है। लार्ड सिह के बिहार के गवर्नर होने के बाद यह विश्वास किया जाता था कि दूसरा भारतीय गवर्नर कोई मुसलमान ही होगा।

जिस तरह लार्ड सिंह का रहन सहन बिल्कुल अंग्रेजी ढग का था, उसी प्रकार जिन्ना साहब का भी था, और यही समझा जाता था कि मुसलमानो मे सबसे प्रवीण होने के कारण यही मुसलिम राज्यपाल होगे। कहते है कि उनकी पत्नी को भी यही आशा थी, और वे बडी निरुत्साहित हुई जब उन्होंने देखा कि जिन्ना साहब की इधर कोई प्रवृत्ति नही है। यह सब सुनी हुई बातें ही मैं कह रहा हूँ। मेरे पास इसका कोई प्रमाण नही है।

कराची की घटनाएँ और वातावरण मे मुझे ऐसा जरूर प्रतीत हुआ कि अपने जीवन की ऐसी परम्परा के बाद सरकारी पद पर बैठने मे उन्हे कोई प्रसन्नता नही हुई। सम्भव है उन्होंने इसमे कुछ हल्कापन प्रतीत किया। वे ऐसा चाहते हुए मालूम हुए कि जिस व्यक्ति को वे अपना सबसे बडा प्रतिद्वन्द्वी समझते है और जो स्वतन्त्रता की स्थिति मे भी कोई पद नही ले रहा है, उसे पद लेने पर बाध्य किया जाय। जिन्ना साहब का ऐसा विचार हो सकता था कि 'जिस प्रकार सार्वजनिक जीवन मे गाधीजी की और मेरी बराबरी है, उसी प्रकार सरकारी जीवन मे भी हो'। ऊपर से जिन्ना साहब ऐसा कहते हुए प्रतीत होते थे कि वे बराबरी से उसी व्यक्ति से बात कर सकते हैं जो उनके बराबर का हो। वे किसी दूसरे से ऐसा नही कर सकते। महा राज्यपाल (गवर्नर जनरल) तो महा राज्यपाल (गवर्नर जनरल) से ही बात कर सकते है, किसी साधारण नागरिक से नही। ये पारसी मित्र कराची मे ही थे और प्रयत्नशील भी थे कि जिन्ना साहब गाधीजी से मिलना स्वीकार कर ले। जब महात्माजी की मृत्यु का दु खद समाचार वहाँ पहुँचा तब ये मित्रगण सतप्त और भग्न हृदयो को लेकर वापस चले गये।

यह आश्चर्य की बात है कि भारतीय हिन्दू तो प्राय यह समझते थे कि महात्माजी तो मुसलमानो का पक्षपात करते हैं, विभाजन के भीषण दिनो मे भी हिन्दुओ के कष्टो से कही अधिक मुसलमानो का कष्ट उन्हे पीडा देता है। छोटी सी मसजिद के ध्वस होने से वे अधिक सतप्त होते हैं और बडे से बडे मन्दिरो और गुरुद्वारो के नष्ट होने के समाचार से वे उदासीन रहते हैं, पर

जिन्ना साहव स्वय गाधीजी को मुसलमानो का सबसे बडा शत्रु मानते थे। ऐसे लोगो ने जो जिन्ना साहव को अच्छी तरह जानते थे, मुझसे कहा है कि वे देश के अनन्य नेता होने की आकाक्षा रखते थे। पर जब गाधीजी आये और उन्होने जनसाधारण का हृदय यकायक और सम्पूर्ण रूप से अपनी ओर आकर्षित कर लिया, तो जिन्ना साहव के कार्यक्रम को बडा धक्का लगा। आरम्भ मे गाधीजी और वे साथ ही काम करते हुए देख पडे, पर शीघ्र ही उनमे पार्थक्य हो गया। गाधीजी के अद्‌भुत आचरण और उससे भी अधिक अद्‌भुत विचारो से जिन्ना साहव को घृणा हुई। साधारण मुस्लिम समाज जिन्ना साहव के आचार विचार के कारण उनसे सशक रहता था पर पीछे वे ही इसके अनन्य नेता हो गये। अग्रेज इनका समर्थन करने लगे क्योकि विजित जाति मे भेद पैदा करके ही विदेशी राज्य कर सकता है। मुझे तो अब तक कोई ऐसा अग्रेज नही मिला जो हिन्दुओ और मुसलमानो के शोचनीय मतभेद की समस्या मे जिससे पाकिस्तान की स्थापना हुई, जिन्ना साहव का पक्ष न ले।

जब मैं आसाम का राज्यपाल था मुझे लुइस नाम के अग्रेज मिले जो उस समय आयल कम्पनी के प्रमुख थे। इनकी बातचीत से मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि ये अपने को देश का राजा समझते है और इनका मत यह है कि आसाम राज्य मे बिना इनकी अनुमति के कुछ न हो। मुझे उनसे कहना पडा कि 'एक देश मे दो राजा नही हो सकते और दो के आदेश नही माने जा सकते। मै तो चाहता हूँ कि यहाँ मेरा शासन चले, आपका नही'। एक बार राजनीतिक स्थिति और देश के विभाजन के सम्बन्ध मे बात होने लगी। मैने बडी सादगी के साथ यह कहा कि 'आश्चर्य की बात है कि जिन्ना साहव को गाधीजी के प्रति इतना विकार रहा'। इस पर वे बडे उत्तेजित हो गये। उन्होने कहा 'क्यो न हो ? गाधी ने कहा था कि जिन्ना समाप्त हो गये और जिन्ना के लिए आवश्यक हुआ कि वे दिखलावे कि "मै समाप्त नही हुआ" '।

इस पर मै स्तब्ध रह गया। गाधीजी को जहाँ तक मै जानता हूँ,

महात्माजी की मृत्यु

महात्मा गाधीजी के आन्तरिक भावो के सम्बन्ध मे विभिन्न लोग जो चाहे समझे, पर मै जहाँ तक जानता हूँ महात्माजी बडे धर्मपरायण हिन्दू होते हुए भी यह चाहते थे कि सबके साथ समुचित न्याय हो। साथ ही वे अल्पमत समुदायो और दलित वर्गो के साथ केवल न्याय ही नही करना चाहते थे, उदारता का आचरण रखना चाहते थे। वे देखते थे कि हिन्दू-मुसलिम समस्या हिन्दुओ ने ही स्थापित की है। धर्म परिवर्तन करके हिन्दू ही मुसलमान हुए है। जैसा समझा जाता है कि बलात्कार के कारण ऐसा हुआ, यह सम्भव नही है। बलात्कार मात्र से किसी देश की एक चौथाई जनसख्या धर्म परिवर्तन नही कर सकती। जब किसी समाज मे कुछ दोप होता है तभी लोग उसे छोड कर दूसरे समाज मे जाते है। हिन्दू धर्म और समाज का वे इसे बडा कलक समझते थे कि अपने को उच्च जाति के समझने वाले लोग अपने लाखो भाई बहनो को जन्म के ही कारण अस्पृश्य माने। अवश्य ही महात्मा गाधी बडा प्रयत्न कर रहे थे कि हिन्दू समाज से अस्पृश्यता दूर हो और जो करोडो लोग हिन्दू से मुसलमान हो गये है, उन्हे आश्वासन दिया जाय कि उन्हे किसी प्रकार का बहुमत से भय नही है। स्वतन्त्र भारत मे उनके साथ पूरा न्याय होगा और वे नागरिकता के सभी अधिकारो के पात्र होगे। हिन्दू समाज को बहुमत मे और प्रभावशाली दशा मे देख कर यदि गाधीजी के कुछ विचारो से ऐसा प्रतीत होता था कि वे मुसलमानों अथवा हरिजनो की तरफ पक्षपात कर रहे है तो इसका अर्थ यह नही था कि वे स्वय सच्चे हिन्दू नही थे अथवा अपने ही समुदाय के प्रति सच्चा न्याय नही करना चाहते थे। वे तो सब का उद्धार और सबको ही उन्नत बनाने मे प्रयत्नशील रहे।

मै जलपान करने को प्रवृत्त हो ही रहा था कि दूसरे लोगो ने दौडकर घबडाते हुए कहा कि 'गाधीजी की मृत्यु हो गयी'। इसके बाद कौन कुछ खा पी सकता था। सब स्तब्ध हो गये। किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर इधर उधर दौडने लगे। पाकिस्तान के सचिवालय से और अन्य स्थानो से विशेषकर स्त्रियाँ दौडी हुई आँख मे पानी भरे हुए सवेदना प्रदर्शित करने आयी। मै तो अवाक् हो रहा था। आसुओ को रोकना कठिन हो रहा था। शरीर और मन दोनो ही निर्जीव हो रहे थे। सायकाल ६ बजे के रेडियो ने पूरा दु खद समाचार दिया। दूसरी सब खबरो को रोक कर इसी को वह बराबर दोहरा रहा था। अपने को सम्भालना, आगन्तुको के सहानुभूतिपूर्ण शब्द सुनना, उनको धन्यवाद देना, परस्पर विरोधी वास्तविक आवेगो और औपचारिक कर्तव्यो मे हम सब विह्वल हो रहे थे। सारे देश के साथ-साथ हमारा भारतीय उच्चायुक्तालय भी शोकमग्न रहा।

हमारे भवन के झण्डे झुकाये गये। १३ दिन के पूर्ण शोक की दिल्ली से घोषणा हुई। यह अवधि समाप्त भी नही हुई थी कि जिन्ना साहब ने अपने महल मे भोज दिया। मुझे भी निमन्त्रित किया गया। साधारणत जब राज्य के मुखिया की तरफ से ऐसा निमन्त्रण आता है तो उसे प्रार्थना न समझ कर आदेश समझा जाता है। आवश्यक कार्यक्रमो को छोड कर और पहले से किये गये सकेतो को काट कर निमन्त्रित लोगो के लिए ऐसे भोजो मे जाना आवश्यक हो जाता है। राजदूतो को जिनमे मै भी था, ऐसे नियमो का पालन करना अनिवार्य होता है। मुझे दु ख हुआ कि पाकिस्तान के महा राज्यपाल भोज दे रहे है, चाहे इसका अवसर कुछ ही हो, जब वह देश जो उनका भी पहले था, घोर शोक मे निमग्न है। मैने निमन्त्रण अस्वीकार करते हुए लिखा कि ऐसे शोक के समय मै नही आ सकता।

पाकिस्तान की विधान सभा मे गाधीजी की मृत्यु के सम्बन्ध मे शोक प्रदर्शन किया गया। मै इस अधिवेशन मे दर्शक के रूप मे गया था। पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली

खाँ, सिन्ध के मुख्य मन्त्री जनाब खुरों साहब और अन्य वक्ताओं ने गांधीजी की बड़ी प्रशंसा की और 'महात्मा' शब्द से ही उनका वे बराबर निर्देश करते रहे। जिन्ना साहब अध्यक्ष थे। जैसी कि ऐसे अवसरों के लिए प्रथा है, अन्त में वे भी बोले। थोड़े से ही शब्द उन्होंने कहे। उन्होंने गांधीजी का नाम नहीं लिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि 'महात्मा' शब्द का प्रयोग वे नहीं करना चाहते थे पर जब उनके साथियों ने ही ऐसा किया तो वे समझ नहीं पा रहे थे कि वे किस शब्द का प्रयोग करें। गांधीजी के नाम के साथ 'महात्मा' जोड़ना उन्हें नापसन्द था। गांधीजी का संकेत 'उन' और 'वह' से ही उन्होंने किया और कहा कि 'उन्होंने अपनी जाति वालों और धर्मावलम्बियों की सेवा यथाबुद्धि और यथाशक्ति की। मैं यथोचित समय पर सभा के भाव भारत के गवर्नर जनरल के पास पहुँचाऊँगा'। जिन्ना साहब ने बराबर शायद यही कहा कि 'उन्होंने अपने सम्प्रदाय और धर्म वालों की सेवा की'। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, जिन्ना साहब के सचिव ने लार्ड माउन्टबेटन को सभा का प्रस्ताव भेजा। जिन्ना साहब ने अपने हस्ताक्षर से नहीं भेजा। मैंने सुना कि ऐसा स्वाभाविक ही था, क्योंकि सूचक उत्तर भी भारत के महा राज्यपाल के सचिव के हस्ताक्षर से ही आया।

महात्माजी की मृत्यु से सभी लोग सन्न हो गये पर संसार का काम तो चलता ही रहेगा, चाहे कोई मरे चाहे कोई जीये। दुःखी हृदयों से भारतीय उच्चायुक्त के कर्मचारीगण सिन्धी हिन्दुओं को विदा करने का कार्य करते रहे। शोक प्रदर्शन के लिए भारत शासन की तरफ से जो कृत्य बतलाये गये थे, उनको मैंने पूरा किया। निर्धारित दिवस पर क्लिफ्टन के समुद्रतट पर मैंने स्नान भी किया। वहाँ पर हवा खाने वाले कुतूहल से मुझे इस दशा में देखते रहे। कुछ लोग तसवीर भी लेने लगे। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि सर्व भारतीय नौकरियाँ अर्थात् इण्डियन सिविल सर्विस और इण्डियन फारेन सर्विस के सदस्यों ने जो उच्चायुक्तालय में काम करते थे, ऐसा नहीं किया यद्यपि अंग्रेजी शासन के समय से अपने

मालिको का खूब अनुसरण करते थे और उन्ही की तरह टोपी उतारते और पहनते थे और अन्य कृत्य करते थे। उन्हे सम्भवत अपने देशवासियो का राज्य उतना पसन्द नही था जितना विदेशियो का।

वास्तव मे क्लिफटन मे स्नान के लिए जाने के पहले मै महात्मा गाधीजी की मूर्ति के सामने गया जो पाकिस्तान की स्थापना के पहले कराची के नागरिको ने वहाँ की मुख्य सडक पर स्थापित की थी। नगे पैर उतर कर मैंने मूर्ति की आराधना की। ये उच्च कर्मचारीगण अपनी मोटरो पर बैठे ही रह गये। उतरे भी नही। वे तो उच्चायुक्त को समझते थे कि वह कोई असभ्य वाहरी व्यक्ति है जिसने पूर्ण रूप से अयोग्य होते हुए भी किन्ही अनजान कारणो से इस उच्च पद को प्राप्त कर लिया है। उस समय के खाद्य मन्त्री डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने सवसे निवेदन किया था कि महात्माजी के स्मारक कोष मे अपने १० दिन की आय को दे। मुझे देते देख कर मेरे निजी नौकरो और कार्यालय के निम्न कर्मचारियो ने अपना अश दिया पर वडे पदाधिकारियो के ऊपर डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के निवेदन का कोई प्रभाव नही पडा। इनके अपने निज के आचार होते है। थोडो को छोड कर मुझे इनसे सदा ही वडी मायूसी हुई है। अपने लम्वे सार्वजनिक जीवन मे इनमे से कितनो से ही मेरा सम्पर्क सरकारी और गैर सरकारी स्तरो पर हुआ। मुझे इनके आचरण से सन्तोष नही ही हुआ।

आश्चर्य की वात है कि महात्माजी की मृत्यु के बाद जिन्ना साहव का स्वास्थ्य वरावर गिरता गया। वे कराची मे वहुत कम रहने लगे। क्वेटा और जियारत मे ही वे अधिक समय विताते थे। कोई विशेष महत्व और आवश्यक अवसरो के लिए ही वे कराची आते थे। तव वडी धूमधाम से उनकी सवारी निकलती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि महात्माजी के उठ जाने के वाद उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि 'ससार मे मेरे वरावर का अब कोई रह ही नही गया जिससे मै प्रतिद्वन्द्विता कर सकता। ससार मे तो मेरा काम ही समाप्त हो गया'। गाधी जी के चले जाने के वाद वे केवल

साढ़े सात महीने और जीवित रहे। गांधीजी की मृत्यु ३० जनवरी को हुई और ये ११ सितम्बर को संसार से उठ गये। इनकी मृत्यु की कथा रहस्यमय है, इसे मैं आगे सुनाऊंगा।

कायदे आजम का देहावसान

१२ सितम्बर १६४८ के प्रात काल का ४ बजे का समय रहा होगा। कराची मे उस समय बडा अधेरा रहता है। टेलीफोन की घटी बजी। मैं सुनने के लिए उठा। शासन के सचिव विशेष बोल रहे थे। 'हैलो, अमुक मर गये'। विशेषण सम्मानसूचक नही था। इससे मेरा पूछना स्वाभाविक ही था 'कौन'? उत्तर मिला 'कायदे आजम और कौन'। मै आश्चर्यान्वित हुआ और कहा—'ऐसा नही हो सकता। अभी तो कल सायकाल हम सब फ्रास के राजदूत की पार्टी मे मिले थे। आपने विश्वास दिलाया था कि जिन्ना साहब अच्छे है। हुआ क्या'? उत्तर मिला—'पार्टी को जाने दो। उसके बाद तो हम सब भोज मे गये। अर्द्धरात्रि मे हम सब को सूचना मिली कि उनकी मृत्यु हो गयी। मैं अभी राजभवन से लौटा हूँ। उत्तराधिकारी निश्चित हो गये है। मै चाहता हूँ कि आप अनुमति-पत्र दे दे जिसमे फौरन विशेष हवाई जहाज दिल्ली जाय और वहाँ से प्रस्तावित गवर्नर जनरल और अन्य विशिष्ट लोगो को लाये'। मुझमे बतलाया गया कि नये गवर्नर जनरल ख्वाजा नाजिमुद्दीन जो उस समय पूर्वी पाकिस्तान के मुख्य मन्त्री थे, कार्यवश दिल्ली आये हुए थे। मैने इन अपने सचिव मित्र मे कहा कि 'आप फौरन ही किसी को भेजिए। मै तुरन्त अनुमति-पत्र उन्हे दे दूंगा जिससे यथासम्भव शीघ्र दिल्ली पहुँचा जा सके।' उनके प्रतिनिधि शीघ्र ही आये। मैने रोशनी बाली। मेरे पास कोई सहायक नही थे। यह कह देना उचित होगा कि दूतावास की पहली मजिल पर मै अकेला रहता था और मेरा दफ्तर नीचे की मजिल मे था। मेरा निज का प्रबन्ध बडा सादा था। मुझसे कितनो ने ही कहा कि मेरे रहने के प्रकार राजदूत के अनुरूप नही है। मेरा उत्तर सदा यही रहता था कि यदि मै ही योग्य नही हूँ तो

शान-शौकत के सोफा-मेज ही मेरे कार्य को उत्तम कैसे बना सकते है। मैने अपने सब कागज निकाले। जैसा मै अपने पहले लेख मे कह चुका हूँ, आवश्यकता के अवसरो के लिए इन्हे मैं सदा अपने पास रखता था। आगन्तुक से मैने कहा कि 'जो लोग जाने वाले है उनका नाम बतलाइए जिससे मैं इस पर लिख दूं'। उन्हे मालूम नही था कि कौन लोग जायेंगे। इस पर मैंने सादे कागज पर दस्तखत कर दिये और उन सब को जाने का अधिकार दे दिया जिनका नाम उस पर पीछे लिखा जाय। ऐसी यात्रा के लिए मेरी अनुमति आवश्यक थी। मेरा यहाँ नम्रतापूर्वक लिखना अनुचित न होगा कि जहाँ तक मुझसे हो सकता था, मैं पाकिस्तान शासन के साथ शिष्टाचार बरतता था और यही प्रयत्न करता था कि उन्हे किसी प्रकार की शिकायत न हो।

जिन्ना साहब की मृत्यु सम्बन्धी घटनाएँ रहस्यमय रही है। सब बाते न किसी को मालूम है, न मालूम होगी। यदि कोई पूरा हाल बतला सकता है तो वह उनकी बहिन मिस फातिमा जिन्ना है। इसमे कोई सन्देह नही कि ११ सितम्बर के तीसरे पहर जिन्ना साहब गवर्नर जनरल के विशेष हवाई जहाज पर क्वेटा से कराची के फौजी हवाई अड्डे मौरीपुर पर आये। उनकी बहिन मिस फातिमा जिन्ना उनके साथ थी। पीछे यह कहा गया कि उनके साथ कोई चिकित्सक या परिचारिका नही थी। यदि यह सत्य है तो बडे आश्चर्य की बात है कि ऐसे समय ऐसे बडे व्यक्ति के साथ डाक्टर, नर्स आदि न हो। उनके साथ और कौन आया, यह नही कहा जा सकता। जब कभी वे कराची आते थे, हम सब राजदूतो को सूचना दी जाती थी और हम सभी निर्धारित सरकारी प्रथा के अनुसार हवाई अड्डे पर उनका स्वागत करने जाते थे। मन्त्रीगण, उच्च राज्याधिकारी और विशिष्ट नागरिक उनके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर सदा उपस्थित रहते थे। राजदूत एक पक्ति मे खडे होते थे और उनका इनसे परिचय कराया जाता था। कराची मे उनका आना सदा सार्वजनिक रूप से होता था। इस बार तो किसी को सूचना भी नही दी गयी कि वे आने वाले है। ऐसा मालूम पडता

है कि मौरीपुर पर वे रोगियो की गाडी (ऐम्बुलेस वैन) मे रखे गये। गाडी पुरानी और जर्जर थी। राजभवन जाते हुए रास्ते मे यह टूट गयी।

कराची के रेड-क्रास के मुखिया उन दिनो श्री जमशेद मेहता थे। वे वहाँ के वडे प्रतिष्ठित लोकप्रिय नागरिक थे। इन्होने मुझसे पीछे कहा कि उस दिन शाम को उन्हे सूचना मिली कि कोई वहुत बीमार है जिसके लिए रेड-क्रास के ऐम्बुलेस वैन की आवश्यकता है। उनसे प्रार्थना की गयी कि यदि हो सके तो उसे भेज दे। श्री मेहता ने मुझसे कहा कि उनको यह नही वतलाया गया कि जिन्ना साहव के लिए इसकी जरूरत है, नही तो वे स्वय ही अवश्य उसके साथ जाते। उन्होने गाडी भेज दी जिस पर जिन्ना साहव राजभवन पहुँचाये गये। यह करीव ५॥ वजे सायकाल की वात होगी। पीछे वतलाया गया कि करीव ७॥ वजे उनका देहावसान हो गया। तव भी किसी को सूचना नही दी गयी। नवाबजादा लियाकत अली खाँ से पीछे मैने एक वार उस दिन की घटनाओ की चर्चा करते हुए कहा कि 'आश्चर्य है कि फ्रास के राजदूत की पार्टी जिन्ना साहव की मृत्यु के समय होती रहे और इसकी खवर किसी को न हो'। प्रधान मन्त्री ने मुझसे कहा कि कायदे आजम वहुत सादे जीवन के सत्पुरुप थे। वे अपने सम्वन्ध मे किसी प्रकार का प्रदर्शन पसन्द नही करते थे। इस कारण उनकी अन्तिम यात्रा का समाचार किसी को नही दिया गया। वहुत से लोग तो यहाँ तक कहते थे कि वास्तव मे उनकी मृत्यु क्वेटा मे ही हो गयी थी, और अत्येष्टि क्रिया के लिए उनकी वहिन उनके शरीर को कराची लायी। जो कुछ हो, यह तो स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु का समाचार अर्द्धरात्रि तक न प्रधान मन्त्री को, न अन्य किसी को दिया गया। दु खद घटना के पाँच घटे तक यह समाचार क्यो नही दिया गया, इस सम्वन्ध मे जो चाहे, जैसा अनुमान करे। कहा जाता है कि नवाबजादा साहब सोने जा हो रहे थे जव उन्हे सूचना मिली और वे राजभवन भागे गये। समाचार पत्रो आदि को तभी खवर दी गयी और आमोद प्रमोद के स्थान वन्द किये गये। अर्द्धरात्रि मे सवेरे चार वजे तक मन्त्रीगण

विचार कर रहे थे कि उत्तराधिकारी कौन बनाया जाय। कराची मे बहुत से लोगो का ऐसा विचार था कि मिस फातिमा जिन्ना को अपने भाई के बाद गद्दी पर बैठने का सबसे अधिक अधिकार था पर वास्तविक शासनाधिकारियो ने ख्वाजा नाजिमुद्दीन को वहाँ बैठाना निश्चित किया।

पाठको को स्मरण होगा कि स्वतन्त्रता और देश विभाजन के पहले के सयुक्त भारत के वाइसराय और गवर्नर जनरल लार्ड वेवल ने अपनी प्रबन्ध-परिषद् (एक्जीक्यूटिव कौसिल) के लिए काग्रेस और मुसलिम लीग के प्रतिनिधियो को निमन्त्रित किया था। जिन्ना साहब और मुसलिम लीग ने निमन्त्रण अस्वीकार किया और परिषद् का बहिष्कार किया। पीछे मुसलिम लीग ने आना निश्चित किया। उन्हे पाँच सदस्य दिये गये। उन्होने चार मुसलमान और एक हरिजन श्री जोगेन्द्रनाथ मण्डल को नियोजित किया। ऐसा कर मुसलिम लीग यह दिखलाना चाहती थी कि वह ऐसे सब अल्पसख्यको और दलित वर्गो की रक्षक है जिन्हे बहुमत के शक्तिशाली, दम्भी, हृदयहीन, तथाकथित उच्च जाति के हिन्दू पददलित किये हुए हैं। जब सब की ही मातृभूमि के जीवित शरीर का क्रूरता सहित विभाजन किया गया तो पाकिस्तान नाम के नवनिर्मित पृथक् स्वतन्त्र राज्य के मन्त्रिमण्डल मे श्री जोगेन्द्रनाथ मण्डल भी लिए गये। पर इनके सहयोगी इन पर विश्वास नही करते थे। ये मुझसे अक्सर मिलते थे और सदा ही ये हर प्रकार की शिकायत किया करते थे।

जिन्ना साहब की मृत्यु के कुछ दिनो बाद मेरी उनसे मुलाकात हुई। उन्होने मुझे बतलाया कि अर्द्धरात्रि के सम्मेलन मे वे नही बुलाये गये थे। चार बजे प्रात काल उनके यहाँ राजभवन से एक सज्जन भेजे गये और उन्हे बुलाया गया। उन्होने अपने नौकरो से कह रखा था कि रात को मुझे न जगाया जाय। आगन्तुक से कहा गया कि मन्त्रीजी को इस समय कोई सन्देशा नही दिया जा सकता। इस पर आगन्तुक ने कहा कि मेरा कार्य बडा जरूरी है और मन्त्री के पास मुझे फौरन ले जाया जाय। इस पर नौकरो को मण्डल

साहब को जगाना ही पडा । इन्होने पीछे मुझसे कहा कि जब उन्हे बतलाया गया कि राजभवन से कोई आया है तो वे बहुत घबडाये । उन्हे भय लगा कि 'मुझे गिरफ्तार किया जायगा' । राजभवन के प्रतिनिधि के आने के पहले उन्होने अपने सब नौकरो को शयनागार मे बुला लिया । जब यह खबर दी गयी तो वे राजभवन गये । वहाँ उन्हे सब हाल बतलाया गया । उनसे कोई राय नही ली गयी । पाठको को स्मरण होगा कि उन्होने पीछे अपने पद से इस्तीफा दे दिया और कलकत्ता मे वे रहने लगे । लियाकत अली खाँ ने उनके विरुद्ध बडा ही विषाक्त लेख लिखा । भारत शासन ने भी उनके ऊपर कोई विश्वास नही किया ।

जिन्ना साहब की मृत्यु का समाचार सारे ससार मे प्रसारित हुआ । हमारे भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य ने मेरे पास दु ख का सन्देश भेजते हुए मुझसे कहा कि उनकी तरफ से जिन्ना साहब की अर्थी पर पुष्पमाला (रीथ) रख दी जाय । मै राजभवन जाने के लिए उस समय घर से निकल ही रहा था जब राजाजी का तार मुझे मिला । उच्चायुक्त की हैसियत से मै रीथ लेकर जा ही रहा था । उस पर लगे हुए कार्ड पर का अपना नाम काट कर मैने गवर्नर जनरल राजाजी का नाम लिख दिया जिससे रीथो की राशि मे पता रहे कि किसके यहाँ से कौन रीथ आयी है । यही औपचारिक नियम है जिसका मैने पालन किया । एक दूसरा तार श्रीमती सरोजनी नायडू का था । ये उस समय उत्तर प्रदेश की राज्यपाल थी । उन्होने शोकाकुल परिवार को अपनी सवेदना भेजी थी । जिन्ना साहब के सम्बन्ध मे उन्होने लिखा था कि 'मेरी युवावस्था के ये प्रियतम मित्र रहे है ।' बहुत से सन्देश मेरे पास आये जो सब मैने उपयुक्त अधिकारियो के पास भेज दिये ।

हम भारतीय और पाकिस्तानी दोनो ही ऐसे अवसरो के उपचारो से अनभिज्ञ थे । पर इन्ही की नकल भी करना चाहते थे । पाकिस्तान के सचिवालय को नही मालूम था कि ऐसे समय क्या करना चाहिए । अग्रेज उच्चायुक्त से सलाह ली गयी । उन्होने कहा कि सचिवालय मे एक पुस्तक रख दी जाय जिसमे सब सवेदना

प्रकट करने वाले हस्ताक्षर कर दे। मृत्यु का समाचार पाकर राजभवन मे वहुत से लोग एकत्र हुए। यूरोपीय उपचारो के अनुसार वहुत से सचिवगण शानदार अंग्रेजी प्रकार के काले वस्त्र पहने हुए थे। सम्भव है कि ऐसा ही करना उचित था। पुरातन काशी का पुराने विचार वाला हिन्दू होने के नाते मैं तो सफेद कुर्ता और धोती मे ही गया। नगे सिर और नगे पैर उस कमरे मे गया जहाँ जमीन पर जिन्ना साहव का शरीर पडा हुआ था। मैं उसके चारो ओर घूमा। मेरे हृदय मे दु ख हुआ कि ऐसे पुरुष को भी मृत्यु नही छोडती जिसके कि चालढाल से ऐसा प्रतीत होता था कि वे पृथ्वी को ही अपने टहलने के लिए उपयुक्त स्थान नही समझते। इन्हे भी कफन से ढके हुए पृथ्वी पर एक दिन चित पडना ही होता है।

तीसरे पहर शव यात्रा मे वहुत वडा जुलूस निकला। जिन्ना साहव की पुत्री मिसेस नेविल वाडिया वम्वई से वायुयान से आयी। शादी के वाद उनके पिता से उनका सम्पर्क नही के वरावर था। उनकी शादी से उनके पिता वहुत अप्रसन्न थे। मैने उन्हे कराची मे इसके पहले नही देखा था। मिस फातिमा जिन्ना और ये काला वस्त्र धारण किये हुए मोटर मे चली और वाकी लोग पैदल ही गये। राजभवन से जिन्ना साहव के लिए निर्धारित कब्रिस्तान वहुत दूर था। कडी धूप थी। लम्वी यात्रा कठिनाई से समाप्त की गयी। जिन्ना साहव का शरीर फौजी गाडी (गन कैरेज) पर ले जाया गया और राज्य के मुखिया को जो सम्मान मिलना चाहिए उसके अनुकूल उसकी अत्येष्टि की गयी।

दूसरे दिन राजभवन के एक अफसर मेरे पास आये जो जिन्ना साहव की पुत्री मिसेस वाडिया के लिए वम्वई जाने के लिए अनुमति पत्र चाहते थे। उन दिनो के नियमो के अनुसार विना मेरे उच्चायुक्तालय की अनुमति के कोई पाकिस्तान से भारत नही जा सकता था।

कुछ दिन पीछे वम्वई के पारसी वकील मेरे पास आये। अपने लिए ऐसा ही अनुमति-पत्र वे चाहते थे। उन्होने कहा कि जिन्ना साहव के वसीयतनामे के सम्वन्ध की कार्रवाई उन्हे ही सुपुर्द की

गयी है और उसी काम के लिए वे आये है। उन्होने स्वय मुझे वतलाया कि अपना वम्बई का मकान और कराची का एक मकान वे अपनी वहिन को दे गये है और साथ ही मासिक भत्ते का भी प्रवन्ध कर गये है। वकील साहव ने कहा कि उनकी पुत्री तो विवाह के कारण स्वय वडी धनी है। उन्हे तो कुछ भी नही चाहिए पर जिन्ना साहव उन्हे भी कुछ दे गये है। अपना वाकी धन उन्होने भारत स्थित कतिपय शिक्षालयो को दिया है जहाँ उन्होने स्वय पढा अथवा जिससे वे किसी रूप मे सम्वद्ध रहे। जहा तक मुझे याद पडता है, अलीगढ विश्वविद्यालय को भी इन्होने कुछ दिया। मैं नही कह सकता कि पाकिस्तान की भी किन्ही सस्थाओ को कुछ मिला या नही। सम्भवत कराची मे किसी विद्यालय को उन्होने कुछ दिया। मैं निश्चित रूप से नही कह सकता। वकील साहव ने मुझसे जो कुछ कहा, उसी की स्मृति के आधार पर मैं लिख रहा हूँ। दूसरो के व्यक्तिगत जीवन के सम्वन्ध मे कुछ जानने का जरा भी कुतूहल मुझे नही रहा चाहे कोई कितना ही वडा क्यो न हो। वकील साहव से मैंने कुछ नही पूछा पर जो कुछ उन्होने स्वय कहा, उसे तो शिष्टाचार के कारण सुनना ही पडा।

वहुत वडे और विशिष्ट पुरुप के जीवन की कहानी समाप्त होती है। ससार के इतिहास के वे उन कतिपय लोगो मे है जिन्होने नये देश की स्थापना की और पृथ्वी के मानचित्र पर उसे अकित किया। उनके अतिम दिन सुखी नही थे। वे नितान्त एकाकी पुरुप थे। वे किसी को अपने वरावर नही मानते थे, इस कारण उनके कोई मित्र भी नही थे। कानून-शास्त्र के विशेप ज्ञाता होने के कारण विभाजन के वाद के दृश्यो से वे अवश्य वडे दुखी थे। वडे अभिमानी होने के कारण वे इसे स्वीकार नही करते थे। अवश्य ही उन्हे आशा थी कि देश का विभाजन शान्ति के साथ हो जायगा। उन्हे सम्भवत यह स्वप्न मे भी विचार न हुआ होगा कि इस विभाजन के कारण करोडो नर-नारी और वच्चे अपने पैतृक घरो से उद्वासित हो जायँगे और एक स्थान से दूसरे स्थान उन्हे जाना पडेगा। साथ ही साथ इतनी मारकाट भी मचेगी। ईश्वरेच्छा

वलीयसी। जिन्ना साहब तो अब ससार से उठ गये। मृत लोगो के सम्बन्ध मे अच्छा ही विचार करना चाहिए। उन्हे परलोक मे शान्ति मिले।

हैदराबाद का सम्मिलित होना

सन् १९४८ की ग्रीष्म ऋतु मे कराची मे काफी आतक था। काटन नाम का अग्रेज वहाँ से हेदरावाद बार-बार उड़कर जाता था, और अपने साथ नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र ले जाकर वहाँ पहुँचाता था। हवाई जहाजो की यात्रा के सम्बन्ध मे जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून है, और इस सम्बन्ध मे जो उपचार माने जाते है, उन सब के विरुद्ध उसकी यह कार्रवाई थी। उसे हैदराबाद के निजाम साहब के लिए बडा प्रेम उमड पडा था, और वह उन्हे हर प्रकार से सहायता देना चाहता था जिससे जो 'अत्याचार' भारत उन पर और उनके राज्य पर करना चाहता था उससे उनकी रक्षा की जा सके। पाठको को स्मरण होगा कि कासिम रिजवी ने रजाकारो का सघटन किया था और इन्होने भारत के विरुद्ध विद्रोह का झडा बुलन्द किया। इनका कहना था कि आसफजाही (अर्थात् निजाम के कुटुम्ब की) पताका समुद्र तट तक सब प्रदेशो मे फहरावेगी और सम्भवत दिल्ली के लालकिले पर भी स्थापित होगी। हमारे तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने घोषित किया कि हैदराबाद भारत के पेट मे बसा है। उसे हम मातृभूमि से पृथक् नही होने दे सकते। हैदरावाद के निजाम साहब ने न भारत के साथ न पाकिस्तान के साथ सम्मिलित होना तय किया था। परन्तु पाकिस्तान हैदरावाद को अपना समझता था क्योकि निजाम साहब मुसलिम थे यद्यपि वहाँ की आबादी मे अनुपात से अत्यधिक हिन्दू ही रहते थे।

पाकिस्तान इस बात से बहुत क्रुद्ध था कि भारत चाहता है कि हैदराबाद उसमे सम्मिलित हो जाय। निजाम साहब स्वय स्वतन्त्र सर्वसत्ताप्राप्त राज्य के मुखिया होने की अभिलाषा रखते थे। पाकिस्तान काटन साहब की घृणित कार्रवाइयो की जोरो से सहायता कर रहा था, क्योकि इससे हैदराबाद को युद्ध की सामग्री मिल रही

थी, जो कि भारत के विरुद्ध काम मे आ सकती थी। भारतीय उच्चायुक्तालय (हाई कमीशन) को पता लगा कि कुछ ऐसी वात हो रही है। जव उनको इसका प्रमाण मिल गया तो उन्होने इसकी सूचना दिल्ली को दी। इस पर दिल्ली हमसे वडी अप्रसन्न हुई। मुझे स्मरण है कि विदेश मन्त्रालय से मुझे पत्र मिला जिसमे लिखा था कि इस सम्बन्ध मे पूरी जाँच कर ली गयी है। ऐसी कोई कार्रवाई नही हो रही है, ऐसे अनर्गल समाचार हमारे पास न भेजे जायँ। जो कुछ हो मामला गुप्त नही रह सकता था। एक दिन काटन साहव स्वय मुझसे मिलने आये। अवश्य ही वे अपनी अनुचित कार्रवाइयो पर गर्व का प्रदर्शन करना चाहते थे।

वास्तव मे आदमी वडा ढीठ और निर्लज्ज था। उसने मुझसे कहा कि वे अभी हमारे अस्त्र-शस्त्र के कारखानो (आर्डनेन्स फैक्टरियो) के ऊपर वहुत पास से उडते हुए आ रहे हैं। उनकी न कुछ हानि हुई, न हो सकती है। मुझे वडा क्रोध आया। मैंने उनसे कहा कि कानूनन उच्च-आयुक्तालय भारतीय भूमि है। मैं उन्हे गिरफ्तार कर सकता हूँ, पर सीधे दिल्ली भेज सकने के लिए मेरे पास कोई साधन नही है। इस कारण मैं अपनी इच्छा की पूर्ति नही कर सकता। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मेरी समझ मे वे अनुचित कार्य कर रहे हैं, जिसमे पाकिस्तान का और भारत का परस्पर का सम्वन्व और विगडेगा। इससे किसी का भी लाभ नही हो सकता। मैंने उनसे यह भी कहा कि सव अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध उनका आचरण है जिसमे पाकिस्तान अनुचित रूप से सहायता दे रहा है। यह सव कार्य घृणित और लज्जास्पद है। काटन स्वय इस वातचीत के दौरान विलकुल शान्त रहा। वह निजाम और हैदरावाद के लोगो की वडी प्रशसा करता था। उसने सत्य ही कहा कि 'हम लोग उन्हे ही पसन्द करते हैं जो हमारे साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। ऐसे ही लोगो की तरफ हमारे साधु भाव भी होते हैं। हैदरावाद के लोग मेरे साथ वडा ही शिष्ट आचरण करते हैं, इस कारण मैं उनसे प्रेम करता हूँ'। पाकिस्तान के यातायात मन्त्री सरदार अव्दुर्रव निश्तर से इस सम्वन्ध मे मेरी वाते हुईं। दिल्ली के केन्द्रीय विधान मडल की

सदस्यता के समय से मै इन्हे जानता था। कुछ दिन पहले भारत और पाकिस्तान के बीच की हवाई यात्रा के सम्बन्ध मे मैने और उन्होने परस्पर की सधि पर हस्ताक्षर किये थे। मैंने उनसे कहा कि 'काटन अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लघन कर रहे है। वे अपने कार्य के लिए पाकिस्तान की भूमि का प्रयोग करते है। शासन को चाहिए कि उनके विरुद्ध कार्रवाई करे'।

मेरी बात से सरदार निश्तर साहब बडे अप्रसन्न हुए। उन्होने कहा कि 'मै विदेशियो के कार्यो मे हस्तक्षेप नही कर सकता'। साथ ही साथ उन्होने व्यग मे यह भी कहा कि पाकिस्तान ने अपने को भारत के साथ सम्मिलित नही किया है, उसने भारत के लिए 'आप्ट' नही किया है। उन दिनो 'आप्ट' शब्द का बडा प्रयोग होता था। कराची के पैलेस होटल मे मै काटन को आनन्द से घूमता फिरता देखा करता था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे अपने को यहाँ का मालिक समझते है। पाकिस्तानियो के वे बडे प्रेमपात्र हो रहे थे। जब उनकी कार्रवाइयाँ सार्वजनिक रूप से प्रकट हो गयी तो मुझे स्मरण है कि दिल्ली के पत्र मे यह छपा कि 'उच्च-आयुक्त तो अपना वेतन लेना ही जानते है और काटन की दुष्टता के सम्बन्ध मे उन्होने भारत शासन को कोई सूचना नही दी'। मुझे अवश्य ही इससे चोट लगी। अपने पद के कारण स्वय तो कुछ उत्तर नही दे सकता था पर मुझे आशा थी कि भारत शासन की तरफ से मेरे पक्ष मे कुछ कहा जायगा, पर उन्होने कुछ नही किया। इस पर मैने प्रधान सचिव सर गिरजाशकर बाजपेयी को लिखा, उनका ध्यान इस लेख पर आकृष्ट किया, और उन्हे याद दिलाया कि मेरा कार्यालय आरम्भ से ही काटन के दुष्कार्यों की तरफ भारत शासन का ध्यान दिला रहा था, पर वे स्वय उदासीन थे और उन्होने मुझे आदेश दिया कि ऐसे निराधार समाचार न भेजे जायँ। मैने उनसे प्रार्थना की कि जब मेरे ऊपर ऐसे आक्षेप किये जा रहे है तो उन्हे मेरे पक्ष मे कुछ कहना चाहिए। उन्होने उत्तर मे यही लिखा कि मुझे इन सब बातो की परवाह नही करनी चाहिए। जहाँ मामला पडा है वही छोड देना चाहिए। मुझे दु ख हुआ पर मै विवश था, मुझे चुप ही

रहना पडा। पर भारत शासन ने इसके वाद मे काटन के हवाई जहाजो की निगरानी करने का प्रवन्ध किया। उनका ग्रादेश था कि इन्हे देखते ही इन्हे गोली मार कर गिरा दिया जाय। यद्यपि काटन ने मुझसे यह कहा था कि वह कराची से हैदरावाद भारत भूमि के ऊपर उड़कर सीधा जाता है, पर मुझे यह पता लगा कि वह समुद्र पर से पहले गोवा जाता है जो पुर्तगालियो के हाथ मे था। उसकी सीमा ग्रौर हैदरावाद की सीमा मे एक स्थान पर वहुत ही थोडा सा ग्रन्तर था, ग्रौर वह इसके ऊपर छिपकर चुपचाप उड जाता था ग्रौर हैदरावाद पहुँच जाता था। वह वहुत ही कुशल चालक था।

ग्रन्त मे भारत सरकार ने निश्चय किया कि हैदरावाद के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करनी ग्रावश्यक है। इसे पुलीस एक्शन का नाम दिया गया। यह सैनिक ग्राक्रमण नही कहा गया, क्योकि ऐसा ग्राक्रमण विदेशियो के विरुद्ध होता है। ग्रपने लोगो के ग्रनाचार के विरुद्ध जो कुछ कार्य किया जाता है वह पुलीस एक्शन कहा जाता है ग्रर्थात् ग्रानरिक शान्ति के लिए पुलीस ने ही केवल समुचित कार्रवाई की। पाकिस्तान ने इसका ग्रर्थ यह लगाया कि ग्रसहाय मुसलिम राजा के ऊपर शक्तिशाली ग्रौर दुराचारी लोगो ने ग्रकारण ग्रौर ग्रनुचित प्रकार से ग्राक्रमण किया है। हमारी सेना १३ सितम्वर को हैदरावाद मे गयी। वहाँ पर उसे काटन के हवाई जहाज ग्रौर ग्रस्त्र-शस्त्र का कोई पता नही मिला। जहाँ तक मुझे मालूम हुग्रा जव काटन ग्रपने देश लौटा तो ग्रन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध भारत मे ग्राचरण करने के लिए उसे दण्ड दिया गया। पाकिस्तान तो उसे ग्रपना ग्राराध्य वीर पुरुप ही मानता रहा। ११ सितम्वर को जिन्ना साहव का देहावसान हुग्रा। १३ सितम्वर के तीसरे पहर तक कराची मे खवर पहुँची कि भारतीय सेना हैदरावाद मे घुसी है। इस पर करीव ४–५ हजार क्रोध से भरे लोग एकाएक भारतीय उच्च-ग्रायुक्तालय पर पहुँचे। एक प्रकार से उस पर उन्होने धावा वोल दिया। उस समय ग्रन्धेरा हो रहा था। दिन भर के काम के वाद थोडी देर के लिए मैं मोटर पर घूमने गया था। जव मैं लौटा तो मैंने इस भीड को देखा। पाकिस्तान के शासन की तरफ से जो पुलीस

का गारद मुझे दिया गया था उसने घर का फाटक बन्द कर दिया था। बाहर क्रोधी लोग हल्ला कर रहे थे। जब मै आया तो मैंने इस भीड को देखा। अपनी गाडी से मै फौरन उतरा। मैने उस समय यह नही अनुभव किया कि कोई भय है। राजनीतिक पुरुष का जीवन तो भीडो मे ही बीतता है। इससे मै तीस वर्ष से परिचित रहा। मै इसके बीच मे चला गया। मेरे साथ कोई रक्षक नही थे। कुछ ही हो सकता था पर कोई दुर्घटना नही हुई।

मेरे चारो तरफ बहुत से लोग एकत्र हो गये। वे पुकार रहे थे—'तुम कायर हो। तुमने हमारे ऊपर ऐसे समय आक्रमण किया जब हमारे पिता मरे है'। वे जिन्ना साहब की मृत्यु का सकेत कर रहे थे। मै नही कह सकता कि कैसे क्या हुआ पर मैने बात को वास्तविक सत्य ही मानकर कहा—'कायदे आजम की मृत्यु से हम सब भी वैसे ही दुखी है जैसे आप। वास्तव मे हमारी सेना कल ही हैदराबाद जाने वाली थी, पर जिन्ना साहब की एक ही दिन पहले दुखद मृत्यु के कारण हमने एक दिन का मातम मनाया। इस कारण हमारे सिपाही कल हैदराबाद नही गये'। आश्चर्य की बात है कि मेरे शब्दो पर उन लोगो ने विश्वास किया और इसका प्रभाव अच्छा पडा। कुछ लोगो ने कहा—'ठीक है, ठीक है, हमने भी ऐसा सुना है'। इस पर मैंने पूछा—'आप मुझसे क्या चाहते है ?' उन्होने उत्तर दिया—'हम चाहते है कि आप हैदराबाद से हट जायँ'। मैने इस पर कहा—'मैं फौरन ही अपने प्रधान मन्त्री को तार देता हूँ'। मैने अपने एक सहायक को बुलाया और कहा तार भेज दो। तार के शब्द कुछ इस प्रकार के थे—'हैदराबाद मे हमारी कार्रवाई से यहाँ के लोग बडे उत्तेजित हो रहे है। वे चाहते है कि हमारी सेना वहाँ से फौरन हटा ली जाये'। इससे भीड मे कुछ शान्ति हुई। तब मैंने पूछा—'आप और क्या चाहते हे' ? उन्होने कहा—'हम चाहते है कि पाकिस्तान भारत पर चढाई करे'। मैने उत्तर दिया—'ठीक है, पर आपकी सेना को हुकुम देने का मुझे तो कोई अधिकार है नही। आप अपने प्रधान मत्री के पास जाइए और उन्हे अपनी इच्छाएँ बतलाइए।' इस पर चारो तरफ से आवाज आई—'ठीक कहते है,

ठीक कहते हैं'। और तीन मिनट के भीतर वे हजारो लोग एकाएक चले गये जैसे हवा मे अन्तर्द्धान हो गये। किसी भीड को इतनी शीघ्रता से गायब होते मैंने नही देखा था। पीछे मुझे बतलाया गया कि ये प्रधान मत्री नवाब लियाकतअली खाँ के मकान पर गये। वहाँ के दरवाजे और खिडकियाँ इन्होने तोड डाली और माँग पेश की कि भारत पर फौरन चढाई की जाय। मुझे यह भी बतलाया गया कि उनसे मिलने प्रधान मत्री बाहर आये और उन्होने कहा कि जिन लोगो ने 'होम गार्ड' मे अपना नाम लिखवाया हो वे हाथ उठावे। जब कोई हाथ नही उठा, तो उन्होने कहा—'ऐसी अवस्था मे मैं किस शक्ति के आधार पर भारत से लड सकता हूँ।' इस पर भीड लज्जित होकर चुपचाप चली गयी।

जब मैं अपने मकान के भीतर गया, तब राज्य के और नगर के उन्चतम पुलीस अधिकारी दौडे हुए आये। वे वास्तव मे भीड़ के पीछे बराबर मौजूद रहे। उन्होने मुझसे भीड के दुराचरण के लिए क्षमायाचना की। चिन्तित होकर पूछने लगे—'आपको चोट तो नही लगी'। उन्होने कहा कि 'हमे लज्जा आती है कि आपके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया गया'। उन्होने यह भी कहा कि 'आप यदि चाहे, तो पुलीस की गारद दूनी कर दी जाय'। मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि 'मैं बडे मजे मे हूँ। भीड मे तो मेरा जीवन ही बीता है। इस भीड से मिलकर मुझे प्रसन्नता ही हुई। जो व्यवहार मेरे साथ किया गया उसके लिए मुझे कोई शिकायत नही है। आप लोगो के लिए न लज्जित होने न क्षमा-याचना की ही कोई आवश्यकता है'। पुलीस गारद के सम्बन्ध मे मैंने कहा कि 'जो गारद आपने दी है उसे भी आप ले जाइए। मुझे इसकी जरूरत नही है। आप लोगो के भाव चाहे कुछ ही क्यो न हो, मैं तो पाकिस्तान को विदेश नही ही मान सकता। यहाँ के लोग उसी प्रकार से अब भी मेरे भाई हैं जैसे कि विभाजन के पहले थे'। विदेश मन्त्रालय से भी कई टेलीफोन आये। मेरा कुशल समाचार पूछा गया और घटना पर दुःख प्रकट किया गया। जो कुछ मैंने पुलीस कर्मचारियो से कहा था वही टेलीफोन पर भी कह दिया। विदेश सचिव जनाब इकरामुल्ला साहब ने

भी फोन किया। सब बाते सुनकर उन्होने कहा कि भीड के साथ जैसा वर्ताव करना चाहिए वैसा ही आपने किया। इस प्रशसात्मक सदेश से जो कुछ सतोष मै अपने को दे सकता था वह मैने अवश्य ही दिया होगा।

एक दो दिन बाद हम सब लोग राजभवन बुलाये गये। नये गवर्नर जनरल के शपथ ग्रहण का उत्सव था। उस समय भारत और पाकिस्तान दोनो ही ब्रिटिश राजा के अधीन थे। कायदे आजम जिन्ना साहब के उत्तराधिकारी ख्वाजा नाजिमुद्दीन की नियुक्ति के लिए ब्रिटिश राजा की अनुमति आ गयी थी। ४५ वर्ष पहले ख्वाजा नाजिमुद्दीन और मै केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे सहयोगी थे। एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। इस नये पद पर मैंने उनका स्वागत किया। उन्होने भी प्रसन्नता प्रकट की कि मै पाकिस्तान मे भारत का प्रतिनिधि होकर अभी कार्य कर रहा हूँ। मेरा यह सौभाग्य था कि पाकिस्तान के सभी सरकारी और गैरसरकारी जीवन के नेताओ से मैं पहले से परिचित था। अपने देश के सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखने और केन्द्रीय विधान सभा की सदस्यता के कारण ऐसा सम्भव हुआ। नये गवर्नर जनरल को अधिकारारूढ करने के समय राजभवन की शक्ल बिल्कुल ही बदल गयी थी। जिन्ना साहब के बैठने वाले गोल कमरे (ड्राइग रूम) मे जो बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर गालीचे और पर्दे लगे थे लुप्त हो गये। वहाँ तो बैठने के लिए कुर्सी भी नही देख पडती थी। विदेश मत्री सर मुहम्मद जफरुल्ला साहब ने मुझे देखकर कहा कि हैदराबाद मे हम उसी प्रकार से व्यवहार कर रहे है जैसा कोई बलवान दुर्बल को देखकर उसे निगल जाता है। मुझे यह बात पसन्द नही आयी क्योकि मेरा ऐसा विचार है कि किसी देश के विदेश मत्री को दूसरे देश से आये हुए राजदूत से इस प्रकार बात नही करनी चाहिए। अवसर भी गम्भीर था। राज्य के मुखिया की मृत्यु हो चुकी थी। दूसरे उनके स्थान पर स्थापित हो रहे थे। पर मै कोई झगडा नही उठाना चाहता था। मै यह जानता था कि जफरुल्ला साहब किसी अनजान व्यक्ति से बात नही कर रहे थे। हम दोनो एक दूसरे को वर्षो से जानते थे। सम्भव है इस प्रकार

मे बोलते हुए उन्होने पुरानी मुलाकात का लाभ उठाया। आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि कायदे आजम साहब की कोई चर्चा नही कर रहा था। जैसे सभी लोग एकाएक उन्हे भूल गये।

हैदराबाद मे पुलीस एक्शन शीघ्र ही समाप्त हो गया। हैदराबाद भारत का औपचारिक रूप से अग हो गया। पीछे उसका विभाजन हुआ। आधा आध्र देश को गया, चौथाई मैसूर अर्थात् कर्नाटक को मिला और शेप चौथाई महाराष्ट्र मे सम्मिलित हो गया। पूर्ण रूप से वह खडित कर दिया गया और उसका पुराना व्यक्तित्व लुप्त हो गया।

पाकिस्तान के कतिपय व्यक्ति विशेष

अगस्त सन् १९४७ मे करांची पहुँचने पर मैने यह अनुभव किया कि पाकिस्तान मे सम्भवत सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति अलताफ हुसेन साहब है। ये अग्रेजी दैनिक पत्र 'डान' के सम्पादक रहे। यह पत्र पहले दिल्ली से प्रकाशित होता था। पाकिस्तान की स्थापना के बाद यह करांची चला गया। दिन प्रतिदिन भारत के विरुद्ध यह विष उगलता रहा, और पाकिस्तान की आतरिक और विदेशी नीति को निर्धारित करने मे इसका बडा प्रभाव था। कश्मीर के सम्बन्ध मे तो यह बहुत ही विषाक्त बाते लिखता था। अपने व्यग चित्रो मे यह कश्मीर के महाराज सर हरीसिह, उनके दीवान श्री मेहरचन्द महाजन, और सामयिक राजनीतिक नेता शेख अब्दुल्ला को फॉसी पर लटकाता था। उनके टूटे गलो को दिखलाता था और यह बतलाता था कि जब कश्मीर अपने ईप्सित पद को प्राप्त कर लेगा, अर्थात् जब पाकिस्तान उसे जबरदस्ती ले लेगा तो इनकी यही दशा होगी। श्री महाजन कश्मीर की नौकरी छोडने के बाद भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश हुए। शेख अब्दुल्ला मुख्य मन्त्री हुए। फिर उन पर शका की गयी और वे नजरबन्द हुए। वर्षों से उनके ऊपर मुकदमा चल रहा है। महाराजा साहब गद्दी से उतारे गये और बम्बई मे रहने लगे। उनकी वही मृत्यु हुई। उनके पुत्र और उत्तराधिकारी श्री करण सिह कश्मीर के सदरे-रियासत हुए।

पाठको को स्मरण होगा कि जब पश्चिमी पहाडो के जगली लोगो ने कश्मीर पर एकाएक आक्रमण किया तब कश्मीर न भारत मे और न पाकिस्तान से सम्मिलित हुआ था। हैदराबाद की तरह वह भी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र पद की खोज मे था। कश्मीर की कहानी बडी दु खद और विषम स्थितियो से पूर्ण है। किस प्रकार से उसकी सारी जनता हिन्दू से मुसलिम हुई और उसके फिर हिन्दू होने की

अभिलाषा को पडितो ने अपनी व्यवस्था से ठुकराया, किस प्रकार वह गुलाब सिह के अधीन आयी—यह सब बातें यहाँ दुहराने की आवश्यकता नही है। उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है। उसके प्राकृतिक साधन अधिक और पर्याप्त हैं। पर वहाँ के लोग सदा ही दरिद्र रहे। उनकी कोई फिकर करने वाला नही था। ऐसी अवस्था मे जो ऐसे लोगो के दुर्गण होते हैं वे सब इनमे मौजूद हैं। कश्मीर को असहाय पाकर और उसको अपने अधीन करने के विचार से पाकिस्तान ने जगलियो को उत्साहित किया, और अपनी भूमि पर से कश्मीर पहुँचने के लिए मार्ग दिया। हमने इसका विरोध किया, पर हमसे कहा गया कि पाकिस्तान का इससे कोई सम्बन्ध नही है। वह इन जगलियो को रोकने मे असमर्थ है। वे किसी कानून को नहीं मानते। कश्मीर मे उनके जाने के लिए पाकिस्तान उत्तर-दायी नही है। जब महाराज ने अपने को इस भय से बचने मे विवश पाया, तब उन्होने भारत से मिलने की शीघ्रता से प्रार्थना की। ऐसी अवस्था मे राज्य की रक्षा के लिए हम जिम्मेदार हो गये। कश्मीर के लोग इन दुष्टो से अपने को बचाने के लिए उद्यत हुए, पर वे कर ही क्या सकते थे। भारत की सेना और वायुयान कश्मीर पहुँचे और इन जगलियो का आक्रमण रोका गया। राष्ट्र सघ (यूनाइटेड नेशन्स) मे पाकिस्तान के प्रतिनिधि सर मोहम्मद जफरुल्ला ने साफ कहा कि कश्मीर पर जो लोग आक्रमण कर रहे है, उनका पाकिस्तान से कोई सम्बन्ध नही है।

तथापि हम अपनी तरफ से कहते गये कि इस सब मे पाकिस्तान का हाथ है, और हमने राष्ट्र सघ से हस्तक्षेप करने के लिए प्रार्थना की। हमारी नैतिक और सैनिक दोनो ही स्थिति बहुत अनुकूल थी। पाकिस्तान ने कहा था कि आक्रमणकारियो से हमारा कोई सम्बन्ध नही है। ऐसी अवस्था मे इन लोगो के ऊपर कोई कानून लागू नही होता था। किसी भी आततायी की तरह वे मार कर भगाये जा सकते थे। हमने व्यर्थ ही उन्हे पाकिस्तान की नियमित सेना का अग मान लिया। फिर यह भी स्पष्ट था कि हमारी सेना के सामने वे भागे जा रहे थे। हम लोगो को गलत सलाह दी गयी। जो कुछ

हो राष्ट्रसघ ने आयोग (कमीशन) नियुक्त किया जो कराची पहुँचा। मुझसे इससे कोई विशेष प्रयोजन नही था। उन लोगो की धीमी और जटिल औपचारिक कार्रवाइयो से न भारत प्रसन्न हुआ न पाकिस्तान। पन्द्रह वर्ष के बीतने पर भी कोई मामला आगे नही बढा है। एक रेखा मानी गयी जिसके पार गोलाबारी नही हो सकती थी, पर इस रेखा के ही सम्बन्ध मे भारत और पाकिस्तान के बीच मतभेद बना रहा। आयोग के सदस्य बहुत दिनो तक कराची मे रहे। उनसे मेरी कभी-कभी मुलाकात होती थी, पर अधिक सम्पर्क नही था। वास्तव मे दिल्ली के विदेशी मन्त्रालय ने मुझे आदेश दिया था कि मैं उनसे कोई सम्बन्ध न रखूं। आयोग के कराची पहुँचने के कुछ ही घटे बाद उसके सचिव मुझसे मिलने आये। मुझे याद है कि अपने प्रधान मन्त्री के इच्छानुसार आयोग के अध्यक्ष से मिलने उनके होटल मे एक दिन प्रात काल गया, और उनसे कहा कि दिल्ली की ससद् मे उपस्थित करने के लिए जो विवरण वे देने वाले थे उसे जल्दी दे क्योकि बहुत देर हो रही है। ससद् का सत्र समाप्त हो रहा है। राष्ट्रसघ की उपयोगिता के सम्बन्ध मे लोगो का जो कुछ विचार हो, पर इसमे सदेह नही कि ससार मे उसके अस्तित्व के कारण बहुत कुछ मारकाट बचायी जा सकी। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध छिड ही जायगा पर राष्ट्रसघ के हस्तक्षेप से इसका निवारण किया जा सका। इसके द्वारा लोगो को स्थिति पर पुनर्विचार करने का अवसर मिलता है और इससे बहुत ही लाभ होता है। सम्भव है कि पाकिस्तान और हमारे बीच के कश्मीर सम्बन्धी मामले और भी जटिल हो गये होते यदि आयोग बीच मे न पडा होता।

सन् १९४८ की ग्रीष्म ऋतु मे श्रीनगर मे वार्षिक जशन (उत्सव) हुआ। उस समय के कश्मीर के मुख्य मत्री शेख अब्दुल्ला ने उसके लिए मुझे आमन्त्रित किया था। मै जाने वाला नही था पर उसी समय सयोगवश मै दिल्ली मे था, और अपने प्रधान मन्त्री तथा रफी अहमद किदवई के आग्रह पर मै भी वहाँ गया। मैने उस समय झेलम नदी पर बडा सुन्दर जुलूस देखा और शेर-ए-कश्मीर कहे

जाने वाले शेख अब्दुल्ला और हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल के प्रति लोगो के प्रेम और श्रद्धा को भी मैंने देखा। शेख अब्दुल्ला ने मुझसे कहा—'मुझे दो वर्ष का समय दीजिए, तब आप जनमत गणना या जो चाहिए कीजिए। सब लोग भारत के पक्ष मे राय देंगे। पाकिस्तान का कोई नाम न लेगा'। यह सब १९४८ की बात है। १९५३ मे हैदराबाद के कांग्रेस के अधिवेशन के बाद वे मद्रास राजभवन मे मेरे अतिथि थे। इन पाँच वर्षो मे उनमे बडा परिवर्तन हो गया, वे दूसरे ही प्रकार की बातें करने लगे। भारत के विरुद्ध उन्हे बहुत सी शिकायते हो गयी। इसके बाद ही वे गिरफ्तार कर लिए गये। तब से बराबर ही नजरबन्द हैं। केवल कुछ दिनो के लिए बीच मे छोडे गये थे।

भारत के उच्च आयुक्त की हैसियत से दूसरे देशो के राजदूतो के बीच मे मुझे प्राय बराबर ही रहना पडता था। उन सबसे मेरा सम्बन्ध स्नेहपूर्ण रहा। मैंने देखा कि राजदूतो की पत्नियाँ उनके कार्य मे कितनी सहायक होती हैं। राजदूतो का विशेष काम यह रहता है कि जिस देश मे वे जायें उस देश मे रहने वाले अपने देशवासियो की फिकर करें। अपने देश के हित पर ध्यान रखना तो उनको आवश्यक है ही, जिस देश मे रहते है वहाँ के शासन से भी उन्हे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना होता है। अपने देश की सेवा करते हुए भी उस देश के लिए कुछ प्रेम भी रखना आवश्यक है। पुराने दिनो मे तो वे अपने देश के वास्तविक प्रतिनिधि होते थे। अब टेलीफोन, तार और वायुयात्रा की सुविधाओ के कारण वे उतने स्वतन्त्र नही रह गये है जैसे पहले थे। अपने देश के शासन केन्द्र से उन्हे बराबर आदेश लेते रहना पडता है। इन राजदूतो की स्त्रियाँ अपने देश वालो से मैत्रीभाव से मिल सकती हैं और जितनी बाते पुरुष नही जान सकते उतनी ये जान लेती हैं। ये अन्य राजदूतो से सौहार्द का व्यवहार रखती हैं। मैं तो बडे असमंजस मे पडा जब दो परस्पर विरोधी देशो के प्रतिनिधियो की पत्नियो ने मुझे बडे प्रेम के शब्दो से सम्बोधन करना आरम्भ किया। वे बिना किसी उपचार के मेरे उच्च आयुक्तालय मे आ

जाती थी, और बहुत से विषयो पर स्पष्ट रूप से बाते करती थी। एक बार मुझे यह शका हुई कि किसी विदेश के राजदूत की पत्नी भारत की आतरिक स्थिति के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी मुझसे प्राप्त करना चाहती है। अवश्य ही मुझे सावधान रहना पडता था। राजदूतो को सदा सतर्क रहना होता है और बहुत बुद्धिमानी से काम करना पडता है। यदि जन-साधारण को यह शका होती है कि उसके देश ने इनके देश के विरुद्ध कुछ किया है तो उसे भीड के क्रोध का सामना करना पडता है। इन पर हमला होने की आशका होती है। उसे बराबर विचार रखना होता है कि उसके देश के शासन और जनता के सम्बन्ध मे ऐसी बात न निकलने पावे जिसे नही निकलनी चाहिए।

सयोगवश अफगानिस्तान के दूतावास से मेरा सबसे निकट का सम्बन्ध हो गया। जब मैं कराची पहुँचा तो अफगानिस्तान के प्रतिनिधि डाक्टर नजीबुल्ला थे। वे वहाँ जरा भी प्रसन्न नही थे। उनके दूतावास के एक सदस्य ने मुझसे कहा कि 'पाकिस्तान को ससार मे रहने का ही कोई अधिकार नही है'। ये बडे विद्वान् पुरुष थे। उनका नाम मैं यहाँ नही ले सकता। अपने मत को वे गुप्त नही रख सकते थे। ऐसी दशा मे यह दूतावास पाकिस्तान का प्रेमपात्र नही ही हो सकता था। डाक्टर नजीबुल्ला शीघ्र ही चले गये। एक दिन तीसरे पहर वे एकाएक मेरे यहाँ आये। कहने लगे कि 'विदा होने मै आया हूँ'। उन्हे वहाँ रहना पसन्द नही था। वे मेरे अच्छे मित्र थे। उनके जाने पर मुझे दु ख हुआ। दो वर्ष पीछे जब मै केन्द्र मे मन्त्री हुआ तब उनसे मेरी फिर मुलाकात हुई। उस समय वे दिल्ली के अफगान दूतावास मे थे।

कराची मे जो सबसे बडे अफगान राजदूत मेरे समय आये थे वे अफगानिस्तान के अमीर (राजा) के चाचा मार्शल शाह वली खाँ साहब थे। मेरे उच्च-आयुक्तालय के पास ही उनका निवास-स्थान था। उनसे मेरी अक्सर मुलाकात होती थी। वे बडे आन और शान के आदमी थे और अपने पद के गौरव के सम्बन्ध मे वे बराबर दत्त-

चित्त रहते थे। यद्यपि वे स्वय बडे विनम्र पुरुष थे, बडे सहृदय और प्रेमी थे, पर यदि उन्हे ऐसी शका होती थी कि उन्हे पर्याप्त सम्मान नही दिया जा रहा है तो वे स्थिति को सह नही सकते थे। उस दिन वे देहरादून आये हुए थे और उनसे फिर मिलकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। उन्होने भी इतने दिनो के बाद मुझसे फिर मिलने पर आनन्द प्रकट किया और पुराने दिनो की हम दोनो ने ही याद की। एक दिन पाकिस्तान और मुसलमानो के सम्बन्ध मे उनसे मैं कराची मे बात कर रहा था, जब देश के विभाजन का प्रसग उठा और मैंने उनसे कहा कि भारत मे मुसलमान अपने को पहले मुसलमान मानते है, फिर हिन्दुस्तानी या भारतीय। मैं उनसे और अन्य मुसलिम देशो के राजदूतो से पूछा करता था कि क्या वे भी अपने को पहले मुसलिम और पीछे अपने देश के नागरिक समझते हैं। मेरे प्रश्न से उन्हे आश्चर्य होता था, और वे सभी यही उत्तर देते थे कि 'हमारे हृदय मे अपने देश का ही प्रथम स्थान है'। शाह वली खॉ साहब ने कहा—'मुसलिम होने के नाते तो हम सभी भाई है, पर पठान की हैसियत से हमसे पजाबियो, सिन्धियो या बगालियो मे क्या मतलब है'।

इसमे कोई सदेह नही कि पख्तूनिस्तान अर्थात् पृथक् पठान राज्य की अभिलाषा, अफगानो और हमारे उत्तर-पश्चिम के लोगो के मन मे बडी तीव्रता से बनी है। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त मे जब इस विषय पर जनमत लिया गया कि वे भारत मे रहना चाहते है या पाकिस्तान जाना चाहते हैं, तो इसी विचार ने मामले को बिगाड भी दिया। भारत की स्वतन्त्रता के वीर सेनानी खान अब्दुल गफ्फार खॉ ने जिन्हे हम प्रेम से 'सीमात गाधी' कहा करते थे इस मतगणना मे योग देना अस्वीकृत कर दिया। उनका कहना था कि न वे पाकिस्तान चाहते है न हिन्दुस्तान। वे पख्तूनिस्तान के पक्ष मे है। सम्भव है उनका और उनके लालकुर्ती अनुयायियो का मत भारत के पक्ष मे होता। तब स्थिति ही दूसरी हो जाती पर इस समय की मतगणना के सिद्धान्त के अनुसार जो लोग मत नही देते वे अपने को मत देने से वचित कर देते है। जितने मत

दिये गये उनमे वहुमत पाकिस्तान के पक्ष मे निकला। यदि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त भारत का अग हो जाता तो स्थिति ही वदल जाती। कश्मीर की समस्या तो उठती ही नही। अन्य वहुत सी समस्याओ का शमन हो जाता। सम्भव है पख्तूनिस्तान की भी रचना हो जाती। पूर्वी वगाल के सिलहट जिले की जनमत गणना की दुर्व्यवस्था से वह मूल्यवान जिला हमारे हाथ से निकल गया। जव से पाकिस्तान की स्थापना हुई है तभी से खान अब्दुल गफ्फार खॉ जेल मे पडे है। आरम्भ मे ये पाकिस्तान ससद् के सदस्य थे। इस सम्बन्ध मे वे कराची आते थे। मुझसे मिलते थे। एक वार मुझसे इन्होने कहा—'आप सवने मुझे छोड दिया'। पर वास्तव मे उन्होने हमे छोड दिया था। हमे उनकी स्थिति पर वहुत दुःख होता है। जेल मे वे पडे हुए है। हम विवश है। चाहते हुए भी हम उनके लिए कुछ नही कर सकते।*

शाह वली खॉ के सम्बन्ध की एक घटना उल्लेखनीय है। यह दिखलाती है कि राजदूत जिस देश मे जाते है उसके मुखिया को उनसे किस प्रकार का व्यवहार करना होता है जिससे उनका गौरव वना रहे। इगलैड मे विदेश के राजदूत जव वहॉ के राजा या रानी को अपना अधिकार पत्र (क्रेडेशियल) प्रस्तुत करते है तो वडा समारोह किया जाता है। खास घोडे की गाडी पर वे वास-स्थान से राजमहल जाते हैं। उन्हे सैनिक सलामी दी जाती है और तव राजा या रानी उनका स्वागत करती है और वे अधिकार पत्र उपस्थित करते है। भारत मे भी वहुत कुछ ऐसी ही परिपाटी है। मैं नही कह सकता कि पाकिस्तान मे अव क्या किया जाता है। जव मै वहॉ था तो कोई समारोह नही होता था। शाह वली खॉ पहले से यह निश्चय कर लेना चाहते थे कि जव वे अपना अधिकार पत्र उपस्थित करे तो उनसे समुचित व्यवहार किया जाय। उनको वतलाया गया कि जिन्ना साहव बैठे हुए ही उनका स्वागत करेंगे।

---

* खान अब्दुल गफ्फार खॉ जेल से छोड दिये गये है। अव वे अफगानिस्तान मे रहते है।

इस पर शाह वली खाँ ने कहलाया कि जिन्ना साहब को उनके लिए खडा होना पडेगा। इस पर उनसे कहा गया कि जिन्ना साहब अस्वस्थ है। वे खडे नही हो सकते। इस पर राजदूत ने कहलाया— चाहे वे स्वस्थ हो या अस्वस्थ हो, उन्हे खडा होना ही होगा। यदि वे नही खडे होते, तो मैं नही आऊँगा। उन्होने यह भी कहलाया कि अधिकार पत्र के प्रस्तुत करने के कृत्य मे जिन्ना साहब को आदि से अन्त तक खडे रहना पडेगा। जिन्ना साहब को झुकना ही पडा। शाह वली खाँ साहब ने उस समय का मुझे चित्र दिखलाया है जिसमे ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिन्ना साहब बडी अनिच्छा से खडे हुए है। उनकी कमर झुकी हुई है, और अपने को सम्हाले रहने के लिए वे किसी वस्तु का सहारा ले रहे हैं।

स्थानो के नामो की उत्पत्ति जानने का मुझे बडा कुतूहल रहता है। पूर्व निर्दिष्ट विद्वान् सज्जन से मैंने एक बार पूछा कि अफगानिस्तान का नाम कैसे पडा। उत्तर मे उन्होने मुझसे पूछा कि क्या सस्कृत मे 'आवागमन' ऐसा कोई शब्द है। मैंने उनसे कहा कि मूल शब्द तो 'गमनागमन' (आना-जाना है) पर उच्चारण की सुविधा के लिए वह थोडे मे 'आवागमन' हो गया है। इस पर उन्होने कहा कि भारत से पश्चिम जाने और पश्चिम से भारत आने का मार्ग अफगानिस्तान रहा। इस कारण वह 'आवागमनिस्तान' अथवा 'अफगानिस्तान' हो गया। इस पर मैंने यह राय देने की धृष्टता की कि पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व जाने का मार्ग होने के कारण यह नाम न पडा होगा। यह जीवन मे मृत्यु और मृत्यु से जीवन में आने जाने का स्थान माना गया होगा। मुझे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राथमिक आर्य लोग अफगानिस्तान और उसके आसपास रहते थे। यही पजाब और सप्तसिन्धव अर्थात् सात सिन्धुओ का प्रदेश रहा। सिन्धु से ही हिन्दू शब्द बना है। वही पर कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तो का विकास हुआ। सम्भवत उस समय वहाँ के लोग पूर्व और पश्चिम के भूखण्डो को नही जानते थे। उन्होने समझा होगा कि यही स्थान है जहाँ जीवन से मरण और मरण मे जीवन की यात्रा होती है। यह स्मरण रहे कि

अशोक के साम्राज्य मे अफगानिस्तान सम्मिलित था यद्यपि वर्तमान भारत का दक्षिणतम अग उसमे नही था। अफगानिस्तान और भारत का परस्पर का सम्बन्ध चिरकाल से चला आ रहा है। कोई आश्चर्य की वात नही है कि यह मैत्री वरावर वनी रही। इसमे विघ्न डालने वाले अग्रेजो के अफगान युद्ध थे और अव भारत के दु खद विभाजन के कारण एक नये देश की सृष्टि हुई जो भारत और अफगानिस्तान के वीच मे स्थापित किया गया।

दूसरों की दृष्टि में भारत

स्काटलैंड के कवि ने दुख मे प्रार्थना की है—'हे ईश्वर, हमे कुछ ऐसी शक्ति दे कि हम अपने को उसी रूप मे देख सकें जिस रूप मे दूसरे हमे देखते हैं।' वास्तव मे यदि हम अपने को ठीक तरह से पहचान सकते, तो कितनी ही खराबियो से अपने को बचा सकते। दूसरो को धोखा न देते, और स्वय भी धोखा न खाते। यदि हम सभी अपने-अपने को ठीक तरह समझ सकते तो ससार के कितने ही कष्ट दूर हो जाते। पर न हम अपने को पहचानते हैं, न पहचानना ही चाहते हैं। हम समझते हैं कि न हम धोखा दे रहे हैं, न धोखा खा रहे हैं, पर वास्तव मे हम लगातार इसे दे रहे है और खा रहे हैं। शायद दे तो नही पाते, पर देने का बिना जाने ही प्रयत्न अवश्य करते हैं। इसमे सन्देह नही कि धोखा खाते जरूर है। सचमुच क्या ही अच्छा होता यदि हम अपने को बिना क्षोभ के उसी रूप मे देख सकते जिस रूप मे दूसरे हमे देखते हैं।

कराची मे भारत के उच्च आयुक्त की हैसियत से सभी देशो के राजदूतो से बराबर सम्पर्क रखने का मुझे अवसर मिलता था। एक प्रकार से मेरा जीवन ही उनके बीच मे बीतता था। राजदूत का परम कर्तव्य होता है कि सबसे बडी शिष्टता से मिले, सबसे शिष्ट व्यवहार करें। अपने देश का अपने को प्रतीक माने और उसकी मान-मर्यादा की सदा रक्षा करें। हम अपने देश मे अब शिष्टता का पूरा मूल्य नही समझते। बहुत से लोग शिष्टता को खुशामद या चापलूसी समझते हैं, और अशिष्टता को स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान का द्योतक। यही कारण है कि आज के भारतीय अन्य देशो के ऊपर अपने और अपने देश के सम्बन्ध मे अच्छा प्रभाव नही डालते। विदेश स्थित अपने राजदूतालयो की भी यह शिकायत सुनी जाती है। राज्यपाल की हैसियत से मुझे कितने

ही विदेशो के विशिष्ट जनो का आतिथेय होना पडा है। ऐसा उपचार माना जाता है कि जब किसी देश के मुखिया—राजा, राष्ट्रपति आदि—या प्रधान मन्त्री किसी दूसरे देश मे जाते है, तो उनके देश मे नियुक्त उस दूसरे देश के राजदूत भी उनके साथ जाते है। ऐसे राजदूतो के साथ उनके नवयुवक सहायकगण भी लग जाते ही है। इसी बहाने उन्हे अपने कुटुम्बी जनो को देखने का अवसर मिल जाता है। जब विदेशी विशिष्ट जन मेरे पास ठहरते थे तो उनके देश से आये हुये हमारे राजदूत भी हमारे पास आ जाते थे। उनके साथी नवयुवको के व्यवहार से मैने जाना कि हमारे देश के सम्बन्ध मे ये अच्छा प्रभाव दूसरे देशो मे डालने के योग्य नही है। सभी विदेशी राजदूतो के सद्व्यवहार को देखकर मैं बहुत ही प्रभावित होता था। अभी हमे विदेशो से सम्पर्क रखने की कला को समुचित रीति से सीखने मे देर लगेगी। खेद है कि हमारे शासको और शिक्षको का इधर ध्यान भी बहुत कम है।

कराची मे यह मैने अवश्य अनुभव किया कि चाहे विदेशी राजदूतगण कितना ही क्यो न शिष्टता का व्यवहार मुझसे रखे, वे वास्तव मे भारत और पाकिस्तान के परस्पर के वैमनस्य और झगडे मे पाकिस्तान के पक्ष मे थे। यदि किसी प्रसग मे इसकी चर्चा होती थी वे बात बदल देते थे। मुझे बडी लालसा थी कि मै इनके आन्तरिक भावो को जानूं। भारत के पक्ष मे इनसे कुछ बात कर सकूं और भारत के विभाजन के सम्बन्ध मे जो भारतीयो के विरुद्ध इनकी भावना है उसे दूर करने का प्रयत्न करूँ। स्मरण रहे कि देश के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना के बाद ससार के लोग भारत को हिन्दू और पाकिस्तान को मुसलिम राज्य समझते रहे है। उनकी यह भी भावना है कि भारत के सभी लोग हिन्दू है और पाकिस्तान के सभी लोग मुसलिम। यद्यपि वस्तुस्थिति यह नही है तथापि साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन होने के कारण यदि ऐसी भावना लोगो के मन मे हो तो अनुचित भी नही है। जब सैयद अली जहीर ईरान मे हमारे राजदूत थे तब वहाँ के लोग कठिनाई से मानते थे कि ये मुसलमान है। जो कुछ हो, मैने किन्ही

एक राजदूत से स्पष्ट रूप से बात करना निश्चय किया। इनसे मेरी काफी व्यक्तिगत मैत्री थी। इनका अनुभव विस्तृत और जानकारी का प्रसार भी काफी बडा था। मैंने उनसे कहा कि 'मैं आप से कुछ स्पष्ट बाते करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि औपचारिक व्यवहार को छोडकर, आप मुझे अपनी राय पूर्ण रूप से दे। मुझे कुछ भी बुरा नही लगेगा। मैं स्वय स्पष्टवादी हूँ और चाहता हूँ कि आप भी मुझे स्थिति समझने मे पूरी सहायता दें'। मैंने उनसे पूछा—'क्या बात है कि भारत और पाकिस्तान के परस्पर के झगडे के सम्बन्ध मे आपने सम्भवत यह मत स्थिर कर लिया है कि इसमे गलती भारत की है। आप पाकिस्तान का ही पक्ष ले रहे है। दूसरी तरफ की बात आप सुनना ही नही चाहते'।

उनका उत्तर था—'मैं तो राजनीतिज्ञ नही हूँ, राजनीति से मुझे कोई सम्बन्ध नही है। मैं तो राजदूत हूँ। अपने देश का यहाँ प्रतिनिधित्व करता हूँ। यहाँ के अपने देशवासियो की फिकर करता हूँ। इस देश और अपने देश के परस्पर के सम्बन्ध को अच्छा बनाने मे प्रयत्नशील हूँ। तुम्हारा इनका क्या झगडा है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नही है'। मैंने इस पर कहा कि 'मेरा ऐसा अनुमान है कि आप की भावना हमारे विरुद्ध है। इस कारण मैं अपनी तरफ से भी कुछ कहना चाहता हूँ'। मुझे अधिक कहने का मौका नही मिला। उन्होने मुझमे कहा कि 'साफ बात यह है कि मैं मुसलिम को समझ सकता हूँ, तुम हिन्दू लोगो को नही समझ सकता। जब मैं किसी चीज को नही समझ सकता तो उसे कैसे पसन्द कर सकता हूँ। जिसे समझता हूँ उसे अवश्य पसन्द करता हूँ'। अवश्य ही मैंने चाहा कि वे कुछ विस्तार से अपनी बात मुझे समझावें। उनका कहना था—'देखिए, यदि मेरी किसी से मित्रता है तो मैं उन्हे भोजन के लिए बुलाता हूँ और वह मुझे बुलाते हैं। मैं उनके यहाँ जाता हूँ और वह मेरे यहाँ आते हैं और भोजन करते हैं। यदि तुमसे मेरी मैत्री है और तुम्हे मैं खाने को बुलाऊँ तो तुम नही आओगे। यदि मैं तुम्हारे पास जाऊँ तो तुम मेरे साथ नही खाओगे'। अवश्य ही वे मेरा व्यक्तिगत सकेत नही कर रहे थे क्योकि मैं तो

जाता ही हूँ और खाता ही हूँ यद्यपि निरामिषभोजी होने के कारण भोजन के पदार्थ मे विवेक करता हूँ। पर इसमे भी कोई सन्देह नही कि हिन्दू जनसाधारण के सम्बन्ध मे उनकी बात यथार्थ है। आज भी बहुत कम हिन्दू ऐसे है जो भोजन मे बराव न रखते हो, किसी का छुआ खाते हो किसी का नही। किसी के छुए किन्ही विशेष पदार्थो को खाते हो, बाकी को नही। राजदूतो का ज्ञान काफी विस्तृत होता है। इन राजदूतो को मालूम था कि हमारे देश मे ऐसा किया जाता है। मैं भी चाहे स्पर्शास्पर्श का भेद न मानूं पर भक्ष्याभक्ष्य को तो मानता ही हूँ। यह भी उनको खटकता ही था विशेषकर जब उन्हे मालूम होता था कि धार्मिक और नैतिक कारणो से मैं ऐसा करता हूँ, स्वास्थ्य के लिहाज से या चिकित्सको के आदेश से नही। उनका कहना था कि जैसे यूरोपीय लोग मैत्री का रूप इस प्रकार से भोजन करने और कराने मे रखते है, उसी प्रकार मुसलमान भी रखते है। इस कारण वे एक दूसरे को पहचानते हैं। बराव रखने वाले हिन्दू को वे नही पहचानते, नही समझते, इस कारण उन्हे दूर रखते है।

आगे उन्होने कहा—'यही बात विवाह मे है। यदि कोई नवयुवती और नवयुवक एक दूसरे को पसन्द करते है, तो हमारे यहाँ विवाह कर लेते है। हिन्दुओ मे ऐसा नही होता। उनमे नाना प्रकार की रुकावटे लगी रहती है। मुसलमानो मे भी हिन्दुओ की तरह की ही प्रथा है और माता-पिता ही अधिकतर विवाह निश्चित करते है, पर साधारणत उनमे रोक नही है, और वे किसी से भी विवाह कर सकते है। इन सब बातो के कारण यूरोपीय लोग और मुसलमान अर्थात् पाकिस्तानी एक दूसरे को समझते है और एक दूसरे की सहायता करने को प्रस्तुत रहते है। हिन्दुओ की प्रथाओ को हम नही समझते। हम उनके अनुसार नही चल सकते। ऐसी अवस्था मे हम उन्हे पसन्द नही करते।' इस पर अवश्य ही मुझे चुप रहना पडा क्योकि यद्यपि मैं जानता हूँ कि मित्रता के लक्षणो मे हमारे यहाँ भी भुंक्ते भोजयते (खाना और खिलाना) कहा हुआ है, 'यत्र प्रीति तत्र न नीति' (जहाँ प्रेम है वहाँ कोई रोक-

ठीक नही है) ऐसा भी कहा हुआ है, अच्छी पत्नी को कही से भी लाने का आदेश दिया हुआ है, तथापि वास्तव मे जो कुछ इस राजदूत ने मुझसे कहा वह सत्य है, और इसमे कोई सन्देह नही कि अधिकतर लोगो पर लागू भी है।

इनकी वातो की यथार्थता को मैं कुछ समझ रहा था। अवश्य ही मैंने देखा है कि परस्पर खाने-पीने वाले लोगो मे घोर शत्रुता रही है, और खाने मे वराव रखने वाले भिन्न-भिन्न जातियो के हिन्दुओ मे यहाँ तक कि हिन्दू और मुसलमानो मे भी वास्तविक मैत्री रही है। यद्यपि वे एक दूसरे के साथ नही खाते रहे—हिन्दू अपनी परम्परा निभाते रहे, पर मुसलमान इसका आदर करते रहे। मैत्री वनी रहती थी। पर यह सव मेरे लिए कहना व्यर्थ था। मैंने यही उचित समझा कि इस प्रसग को आगे न वढाऊँ। जो कुछ इन राजदूत का कहना था उसे स्वीकार करूँ और हृदय मे दु ख करूँ कि हमारे सम्वन्ध मे दूसरो की ऐसी भावना है। वातचीत मैं यही समाप्त भी नही करना चाहता था। मैंने पूछा—'आप हममे और क्या दोप देखते है, सो भी वतलाइये।' इस पर उनका कहना था कि 'मुझे हिन्दू मक्कार प्रतीत होते हैं। वे कहते है ससार अनित्य हे, क्षणभगुर प्राण है, सृष्टि माया है। धन आदि से कोई आसक्ति नही रखनी चाहिए, पर वास्तव मे जितने जोरो से तुम ससार को पकडते हो, धन का लोभ करते हो वैसा न हम करते हैं, न मुसलमान। हम ससार को सत्य मानते हैं, हम जीवन का सुख उठाना चाहते है, हम धन कमाते हैं, पर अच्छे कामो मे उसे हम वरावर देते है। उससे हम उस तरह नही चिपटे रहते जैसे तुम प्रतीत होते हो। कहने को तो क्या लम्वी-लम्वी वाते कहते हो, करने को जैसा करते हो वह सव देखते ही है।'

इस पर वात समाप्त हुई। मैं क्या उत्तर दे सकता था। जो कुछ उन्होने कहा मुझे सत्य ही प्रतीत हुआ। मैं यही चाहता हूँ कि हमारे देशवासी इस राजदूत की दृष्टि से अपने को देखे। वे ही नही, कितने ही और लोग हमे इस दृष्टि से देख रहे हैं। हमे इसका पता नही। हम मोहनिद्रा मे पड़े हैं। अपने देश मे हम अपने को ही

वडा समझते है। अपनी दार्शनिक बातो से ही हम मुग्ध है। बडी-बडी बाते कह-सुन देने से हम सन्तुष्ट हो जाते है। जीवन मे इन्हे कार्यान्वित करना हम अनावश्यक समझते है। मै अवश्य ही चाहूँगा कि हमारे देशवासी इस स्थिति पर विचार करे। जैसा और लोग अपने को देखते है, वैसा हम भी देखे, और हमारे वचन और आचरण से जो दूसरो को भ्रम हो रहा है, उसे दूर करने का प्रयत्न करे।

इन राजदूत ने जो कुछ कहा वडे सकोच से कहा, मेरे वडे आग्रह करने पर ही कहा। मै अनुगृहीत हूँ कि उन्होने इस प्रकार से अपने आन्तरिक भावो को मुझे बतलाया। वास्तव मे मैने अपने हिन्दू समाज को इस रूप मे पहले कभी नही देखा था। अन्य लोगो के हृदय मे हमारे सम्वन्ध मे कैसे विचार है, यह मै नही जानता था। हमारे आचारो और विचारो के कारण उनके मन मे हमारे प्रति ऐसे विकार है, इसका भी मुझे पता नही था। मै नही कह सकता कि इन वाक्यो के पढने से मेरे पाठको के मन मे क्या प्रतिक्रिया होगी। कुछ को क्रोध आ सकता है, कुछ अपनी परम्परा के समर्थन के लिए इच्छुक हो सकते है। पर मै चाहूँगा कि न वे क्रोध करे, न कोई विवाद उठावे। वे केवल यह अनुभव करे कि दूसरे लोग हमे किस रूप मे देखते है। हमारे सम्वन्ध मे क्या विचार रखते है और हमारे सहायक क्यो नही होते।

मै नही कह सकता कि सब लोग दौडकर सवके साथ खाने के लिए प्रवृत्त हो जायँ या सब विवाह के वन्धनो को तोड दे, क्योकि इतना करने मात्र से सारा ससार हमारा मित्र नही हो सकता। मै यह भी नही कहता कि हम अपने सब पुराने शास्त्रो को भुला दे और 'ससार सत्य है, सत्य है' का नारा उठावे। पर मै अवश्य चाहूँगा कि हम सब शान्ति के साथ अपने सम्वन्ध मे अन्य लोगो के भावो को समझकर अपने जीवन का क्रम ही कुछ ऐसा बनावे जिससे कि हम अपने समाज को बिना अस्तव्यस्त किये, अपने जीवन-क्रम मे कुछ ऐसे परिवर्तन करे जिससे कि हम अपना व्यक्तित्व और विशेषता बनाये हुए ससार के राष्ट्रो की पक्ति मे बैठ सके, उनकी सहानुभूति

अपनी तरफ आकृष्ट कर सके और आचार-विचार के प्रदान से हम सभी एक दूसरे को समझते हुए और एक दूसरे से प्रेम करते हुए मनुष्य मात्र की उन्नति मे सहायक हो सके।

पाकिस्तान—क्या, क्यों और कैसे ?

अपने देश विशेषकर हिन्दुओ के सम्बन्ध मे विदेशियो की क्या धारणाएँ है, इसकी कुछ चर्चा मैने पिछले अध्याय मे की है। किन्ही विदेशी राजदूत की वार्ता सुनायी थी। एक दूसरे राजदूत की भी बात मनोरजक है। उसे भी अपने पाठको को सुनाने की इच्छा होती है। ये अग्रेजो के ही प्रतिनिधि थे। किसी प्रसग मे भारत के विभाजन की बात चली। मैने दु ख प्रकट किया कि अग्रेजो ने तीन सौ वर्ष का अपना ही काम बिगाड दिया। भारत को उन्होने उसका वास्तविक रूप दिया। इसी रूप की आकाक्षा सदा से ही भारतीयो के हृदयो मे रही। हिमालय से कन्याकुमारी तक भारत के विशाल भूखण्ड को उन्होने एक किया। उसकी सुव्यवस्था की। सबको एक ही कानून दिया। शान्ति की स्थापना की। फिर चलते चलते उसका विभाजन कर अपना ही काम और आदर्श नष्ट कर दिया। मैने यह भी कहा कि यदि एक तरफ उनके सत्कार्यों की प्रशसा की जायगी, तो दूसरी तरफ इस विभाजन के लिए इतिहास उन्हे कभी नही क्षमा करेगा।

इस पर इन राजदूत का कहना था कि 'हम अग्रेजो के लिए *यह सम्भव नही था कि निरीह मुसलिम अल्पमत को क्रूर हिन्दू* बहुमत के अधीन छोड देते। हमारे लिए यही उचित था कि जब हमने भारत से चले जाना निश्चय किया तो हम उसका विभाजन कर मुसलिमो के लिए एक पृथक् देश बना जायँ। हमने ऐसा ही किया'। इस पर मैने कहा कि 'जिस समय विभाजन हुआ उस समय सयुक्त भारत मे मुसलिमो की सख्या एक चौथाई से अधिक थी। विभाजन के बाद शेष भारत मे उनकी आबादी केवल दशाश रह गयी। यदि ऐसे समुदाय को जिसकी सख्या देश मे २५ या ३० प्रतिशत है, बहुमत से भय है, तो जब उसकी सख्या सौ मे केवल दस ही है

तो उसको अधिक भय होना चाहिए। यह तो शायद ही किसी ने विचार किया हो कि भारत के जितने मुसलमान हैं सब पाकिस्तान चले जायँगे, सभी अपने-अपने घर को छोड देंगे या छोड सकेंगे। जिन लोगो ने विभाजन किया और अल्पमत मुसलिमो की रक्षा के लिए पाकिस्तान की स्थापना की, उन्हे कम से कम यह तो सोचना ही चाहिए था कि बचे हुए भारत मे जो मुसलमान रह जायँगे उनकी सख्या अनुपात से हिन्दुओ से बहुत कम रहेगी। उनके लिए तो बहुत बडा भय उपस्थित हो जायगा। इसके लिए चलते समय अग्रेजो ने क्या प्रबन्ध किया'? इस पर उनका उत्तर था कि 'मैं कोई राजनीतिक पुरुष नही हूँ। मैं तो केवल राजदूत हूँ, और इस विषय पर मैं क्या कह सकता हूँ'।

फिर मैंने उनसे कहा कि 'यदि जाते हुए आपको सभी समुदायो को सुरक्षित रखने की इतनी कामना थी, तो आपने देशी नरेशो के लिए क्या प्रबन्ध किया? ब्रिटिश भारत के हिन्दू-मुसलमान सभी अपने लिए स्वराज्य चाहते थे। उसकी माँग पेश करते रहे। पर देशी नरेशो ने तो अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की माँग कभी भी नही पेश की। जब ब्रिटिश भारत के हिन्दू-मुसलमान सभी अग्रेजी साम्राज्य का विरोध कर रहे थे, उनके महायुद्धो मे असहयोग कर रहे थे, उस समय भी देशी नरेश उसकी सहायता करते थे। अपने देश के विरुद्ध उसका समर्थन करते थे। ब्रिटिश सम्राट् मे उनका विशेष सम्बन्ध था। उनको तो आपने बिलकुल ही असहाय छोड दिया। कश्मीर और हैदराबाद की जो हालत हुई वह आपके सामने है। कितनी ही सन्धियो से आप इनकी रक्षा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। इनको आपने क्यो छोडा'? इसका उन्होने कोई उत्तर नही दिया। बात समाप्त हुई। मैंने अपने प्रश्नो के लिए उनसे क्षमा-याचना की। मेरा मन तो कभी भी यह स्वीकार नही करेगा कि देश का विभाजन अनिवार्य था। मैं तो इससे देश के हिन्दू-मुसलमान और सभी समुदायो की हानि ही देखता हूँ। एक बहुत सुन्दर और उच्च आदर्श की हत्या मैं इसमे पाता हूँ। सब धर्मो, जातियो, समुदायो का जो सुन्दर समन्वय अपने देश मे

हो रहा था, वह नष्ट हो गया—ऐसा मैं मानता हूँ। पर अब मुझे कोई भी उपाय ऐसा नही देख पडता कि इस भयकर उत्पात का समाधान हो सके। यद्यपि जिन्ना साहब ने मुझसे कहा था कि पाकिस्तान की स्थापना होते ही देश की सब समस्याओ का हल हो जायगा, पर वास्तव मे नयी-नयी समस्याएँ खडी हो गयी हैं, परस्पर का द्वेष वढा ही है और किसी का भी कुछ लाभ नही हुआ—न भौतिक, न आध्यात्मिक।

प्रश्न यह उठता है कि हमारे नेताओ ने विभाजन क्यो स्वीकार किया। यह तो स्पष्ट ही है कि महात्मा गाधी इसके घोर विरोधी थे। जैसा कि उन्होने मुझसे स्वय कहा था कि 'हमारा तो सारे जीवन का कार्य मिट्टी मे मिल गया'। कहाँ तो उन्होने साम्प्रदायिक एकता के लिए अपनी जान की वाजी लगा दी थी, कहाँ साम्प्रदायिक आधार पर ही देश को खण्ड-खण्ड कर दिया गया। महात्मा गाधी ने अपने को विवश पाया। अपने अन्तिम दिनो मे उनका यही कहना था कि 'अब मेरी वात कोई नही सुनता। मैं क्या कहूँ, किससे कहूँ'। उनका स्पष्ट कहना था कि काग्रेस को विभाजन स्वीकार नही करना चाहिए। उसके नेताओ को ब्रिटिश शासन से कह देना चाहिए कि हम देश को एक वनाये रहना चाहते है। हमे शासनाधिकार से कोई प्रयोजन नही है। आप जिसको चाहे यहाँ का अधिकार देकर चले जाइए। स्मरण रहे कि उस समय अग्रेज शासन अपने विरोधी दलो अर्थात् काग्रेस और मुसलिम लीग के नेताओ मे वात कर रहा था। भारत का विभाजन कर उसने इन्ही दोनो को एक-एक खण्ड दे दिया, और स्वय वह चला गया। स्वराज्य की माँग का उसने अच्छा वदला चुकाया। हमारे नेताओ ने भी उसकी वात मान ली। मेरे ऐसे कितने ही लोग वार-वार पूछते है—ऐसा उन्होने क्यो किया ?

कूटनीति (डिप्लोमेसी) मे अग्रेजो को कोई नही हरा सकता। सदियो से सारे ससार पर वह अपनी कूटनीति की कुशलता के कारण आर्थिक और राजनीतिक साम्राज्य करते रहे। मनोविज्ञान जैसे ये नैसर्गिक रूप से जानते हे। दूसरो का मन ये स्पष्ट पढ लेते

है। दूसरे इनके हाथ मे किस प्रकार आ सकते है, इसे वे अच्छी तरह जानते है। बडे बडो को उनसे हार माननी पडी है। जिस समय वाइसराय लार्ड वेवल ने काग्रेस और मुसलिम लीग को निमन्त्रित किया कि आप लोग हमारी प्रबन्ध समिति (एक्जीक्यूटिव कौसिल) मे आ जाये और देश का शासन सम्भाले, उस समय मुसलिम लीग ने असहयोग किया। पर यह स्पष्ट था कि यह असहयोग अस्थायी और दिखाऊ ही है। वे लोग अवश्य उसमे आने वाले है। जिन्ना साहब का यही कहना था कि काग्रेस हिन्दू सस्था है, उसे मुसलमानो के प्रतिनिधियो को चुनने का कोई अधिकार नही है। वे चाहते थे कि काग्रेस की तरफ से केवल गैर मुसलिम आवें।

काग्रेस अपने को सार्वदेशिक सस्था मानती रही। लार्ड वेवल ने चाहा कि १५ व्यक्तियो का नाम दिया जाय जो नयी एक्जीक्यूटिव कौसिल के सदस्य हो। पहले केवल ६ सदस्य होते थे और वायसराय और सेनाध्यक्ष को लेकर ८ हो जाते थे। अब १५ की कौसिल बनायी गयी। काग्रेस ने कुछ मुसलमान भी लिये। जब मुसलिम लीग ने आना अस्वीकार किया तो काग्रेस की तरफ से पूरे १५ व्यक्तियो का नाम दिया गया। यह बडी भूल की। १० का ही नाम देना चाहिए था। यह सख्या उस समय के लिए पर्याप्त थी। मुसलिम लीग के लिए ५ स्थान सुरक्षित रखना चाहिए था। पीछे जब मुसलिम लीग ने आना निश्चय किया तो उससे ५ नाम मागे गये। दिखलाने के लिए उन्होने एक हरिजन का भी नाम दिया। सभी तथाकथित अल्पमत समुदायो के वे रक्षक हो गये। कौसिल मे परस्पर की प्रतिद्वद्विता हुई कि कौन शासन विभाग किसको दिया जाय। काग्रेस नेता ही अपने-अपने विभाग को छोडने को नही तैयार हुए। बडे से बडे लोग अड गये। ५ सदस्यो को हटाना पडा। अवश्य ही ये असन्तुष्ट हुए। बाहर जाकर उनमे से कुछ काग्रेस शासन के घोर विरोधी हो गये। महत्त्वपूर्ण वित्त विभाग मुसलिम लीग के हाथ मे चला गया। एक साल भर जो प्रबन्ध समिति थी उसमे घोर सघर्ष मचा रहा। प्रत्येक सदस्य अपने को अपने विभाग का पूर्णाधिकारी मानता था। सयुक्त मन्त्रिमण्डल

को कोई भावना नही थी। समन्वय करने वाला कोई प्रधान मन्त्री नही था। काग्रेस के ही सदस्यो मे घोर मतभेद था। उनका और मुसलिम सदस्यो का मिलना असम्भव हो रहा था। श्री जवाहरलाल नेहरू के मिलने के निमन्त्रण को नवाबजादा लियाकत अली खाँ ने ठुकरा दिया। सब लोग पृथक् पृथक् काम करते थे। सरकारी सचिव गण (कर्मचारी सेक्रेटरी) जो इसका पूरा लाभ उठाते थे परस्पर का झगड़ा बढाने मे सहायक हो गये। जब किसी ने मन्त्रि-मण्डल या मन्त्री का नाम लिया और चाहा कि सयुक्त रूप से काम हो तो जिन्ना साहब स्पष्ट कहते थे कि ये लोग एक्जीक्यूटिव कौसिलर है, मिनिस्टर नही है, सब वायसराय के प्रति उत्तरदायी है। पर वायसराय लार्ड वेवल, फिर लार्ड माउटबेटन ने अपने को वैधानिक मान लिया और अपने कौसिलरो को न वे सम्हालना चाहते थे, न सम्हाल ही सकते थे।

इस बीच श्री जवाहरलाल नेहरू का उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त मे दौरा हुआ। पहले महात्मा गाधी और जवाहरलाल जी का वहाँ बडे उत्साह से स्वागत हुआ करता था। इस समय उनके ऊपर आक्रमण हुआ। वे कठिनाई मे वापस आये। उनके मन मे भी स्पष्ट हो गया कि अब मुसलमानो की भावना उस दूरवर्ती प्रान्त मे भी काग्रेस की तरफ वह नही है, जो पहले थी। उत्तर भारत मे तो चारो तरफ आतक मचा ही हुआ था। एक्जीक्यूटिव कौसिलरो मे आपस मे सघर्ष भी तीव्र होता जाता था। काग्रेस नेताओ का भी यह विचार हो गया कि अब विभाजन स्वीकार करना ही पडेगा। गाधीजी की बात मानना असम्भव है। पर यह बात तो तभी युक्तिसगत होती, जब इनको यह भी निर्णय करना आवश्यक होता कि हमे शासन पर रहना ही है। यदि वे शासन को ही छोडने को तैयार होते तो यह प्रश्न ही नही उठता। अग्रेज जिस तरह देशी नरेशो को छोड कर चले गये, जिस तरह शेष भारत मे मुसलिम और अन्य अल्पमत समुदायो को छोड कर चले गये, उस तरह ये सबको ही छोड कर चले जा सकते थे। तब हमने परस्पर समझ लिया होता कि हमे किस तरह रहना है। जब तक

देश मे अग्रेजो के वर्तमान रहने के कारण किसी को बल मिल सकता था, तब तक वह हल्ला कर सकता था। जब बल का साधन ही न रहता, तो वह क्या करता। इसी से जब कांग्रेस कहती थी 'भारत छोडो' तो जिन्ना साहब कहते थे 'विभाजन करो और छोडो'। अंग्रेज कांग्रेस से रुष्ट थे। जिन्ना की बात उन्होने मानी और उसके अनुसार ही कार्य भी किया। अंग्रेज और जिन्ना दोनो खूब जानते थे कि यदि अंग्रेज विभाजन न कर जायेंगे तो पीछे यह कभी भी न हो सकेगा।

अब अंग्रेजो की कूटनीतिज्ञता का परिचय मिलता है। वे जानते थे कि जब कोई अधिकार के स्थान पर एक बार आ जाता है तो उसे वह छोडता नही। हमारे नेता भी अधिकार को छोडने को तैयार नही हुए। गाधी जी ने अपने को विवश पाया। अपने निकट-तम साथियो को अपना विरोध करते हुए देखा। उनको हार माननी पडी और जब वे दबाये गये तो उन्होने भी कह दिया कि विभाजन कर दिया जाय। एक प्रकार से उन्हे ऐसा कहने को बाध्य किया गया। वे साथियो को छोड नही सकते थे। मनुष्य के नाते उनको भी इनके लिए पक्षपात था। अपनी इच्छा और आदर्श के विरुद्ध उन्होने विभाजन स्वीकार कर लिया। मैंने सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री राजगोपालाचार्य आदि से पूछा कि आपने विभाजन क्यो स्वीकार किया। दोनो ने ही मुझसे कहा कि 'यदि तुम उस समय दिल्ली मे होते तो ऐसा प्रश्न न करते। साथ रहना असम्भव हो गया था। विभाजन मानना अनिवार्य था'। पर मेरा तो कहना यह था कि 'आप हट क्यो नही आये? यदि आप हट जाते तो यह प्रश्न ही नही उठता। आपके रहने के कारण ही तो यह आतरिक सघर्ष मचा हुआ था। अंग्रेज कुछ दिन और बने रहते तो कोई हानि न होती। उनको जाना तो पडता ही। जितने दिन रहना चाहते उतने दिन ऐसे लोगो को अपनी सहायता के लिए बुला लेते जिनको वे पसन्द करते जैसा कि कांग्रेस के असहयोग करने पर वे बराबर करते रहे। यदि न रहना चाहते तो ऐसे दल को राज्य सिपुर्द करके चले जाते जो उसे करने को तैयार होता।

यदि कोई ऐसा दल उन्हे नही मिलता तो वे भी चले जा सकते थे और देश को जो करना होता, वह करता'।

वास्तव मे यह गति न होती। अग्रेज मुसलिम लीग को पूरे देश का राज्य सुपुर्द कर चले जाते। मुसलिम लीग अकेले राज न कर सकती। उसे अन्य समुदायो की सहायता लेनी ही पड़ती। तब कोई ऐसा समझौता हो जाता कि देश अखण्ड रहता और देश का शासन भी सुव्यवस्थित होता। कम से कम मुझे इसमे कोई शक नही है। अब यह सब कहना व्यर्थ है। कल्पनामात्र है। उसमे कोई लाभ नही है। बिगडी बात अब बन नही सकती। मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि शासन के लोभ ने हमारे अधिकारस्थ नेताओ को व्यामोह मे डाल दिया। वे ऐसा विश्वास करने लगे कि यदि हम हट जायेंगे तो देश का नाश हो जायगा। ऐसी अवस्था मे 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धम् त्यजति पडित' के न्यायानुसार आधा राज्य छोड कर शान्ति बनाये रहना आवश्यक था। अधिकार का लोभ और देश की दुर्व्यवस्था के भय ने हमारे नेताओ के मन मे ऐसा प्रभाव किया कि उन्होंने विभाजन स्वीकार कर लिया। कौन भाव अधिक तीव्र था यह मैं नही कह सकता। दोनो तरफ के नेतागणो की कोई हानि न हुई। उनको न जान का और न माल का नुकसान हुआ। वे सब अच्छे-अच्छे पदो पर चले गये। पर करोडो ऐसे साधारण जन इस भीषण खेल मे तबाह हो गये जिनका न राजनीति मे कोई सम्बन्ध था, न वे विभाजन की माँग पेश कर रहे थे। वे तो अपनी गृहस्थी और व्यवसाय मे ही मतलब रखते थे। पाकिस्तान की स्थापना और भारत के विभाजन के अन्तिम कारण की थोडे मे यही दुखद कहानी है।

कराची और आसपास के दृश्य

अन्य नगरो की तरह कराची मे और उसके आसपास कई दर्शनीय स्थान हैं। उदाहरणार्थ कराची के पास ही मघापीर नाम की जगह है जो एक प्रकार का तीर्थ माना जाता था। सिन्ध मे बहुत से पीर और पीरजादा होते हैं। इनका बड़ा आदर और सम्मान है। मघापीर एक छोटे मे कुण्ड का नाम है जिसमे उस समय कई घड़ियाल थे। मुसलमानो से अधिक यह हिन्दुओ का आराध्य स्थान हो गया था। वहाँ के मुसलिम रक्षक ने जो एक प्रकार के पुरोहित थे, मुझसे कहा कि देश के विभाजन मे उनकी बड़ी हानि हुई। हिन्दुओ के चले जाने मे उनकी सारी जजमानी नष्ट हो गयी। हिन्दुओं ने वहाँ पर स्नानागार आदि यात्रियो की सुविधा के स्थान बनवा दिये थे। वे बड़ी सख्या में वहाँ जाते थे। सिन्ध मे हिन्दू-मुसलिम ऐक्य पूरी तरह से था। इसके नष्ट होने पर मुसलिम सिन्धी को उतना ही कष्ट हुआ जितना हिन्दू सिन्धी को।

कराची मे थोड़ी दूर पर मनोरा नाम का छोटा सा टापू है। मनोरा शब्द अवश्य ही सस्कृत के मनोहर शब्द का अपभ्रंश है। यहाँ पर पानी के देव वरुण का मन्दिर था। इनके इसी मन्दिर से मैं परिचित था। अब वह चुन दिया गया था और वहाँ ताला बन्द था। देव और पुरोहित सब चले गये थे। बेहूदे लोगो का वह क्रीडास्थल हो गया था। मन्दिर भ्रष्ट कर दिया गया था और चारो तरफ गन्दगी फैली हुई थी।

मैं सिन्ध के आन्तरिक भागो मे दौरा भी किया करता था। जो कुछ मैं देखता था उसमे दु ख भी होता था, साथ ही सन्तोष भी होता था कि यथाशक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। कराची मे अधिक प्रसिद्ध हैदराबाद का नगर था। कराची का पता अग्रेजो ने लगाया था। उनमें यह अद्भुत शक्ति है कि वे ऐसे स्थानो

को पहचान लेते है जो सुन्दर भी हो और उपयोगी भी हो। साथ ही वहाँ की जलवायु मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अनुकूल हो। कराची मे ही ये सब गुण है और वह विशाल नगर हो गया। तण्डो आदम नाम का एक दूसरा नगर है। यह किसी समय 'आदि स्थान' था। कहा जाता है कि जब प्रथम बार शत्रु के रूप मे अरब लोग सन् ७१२ मे मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व मे भारत आये तो यही राजा दाहिर से उनका युद्ध हुआ था। पहले अरब लोग व्यापारी के रूप मे भारत के दक्षिण प्रदेशो मे आते थे। इसलाम का उसके अनुयायियो पर सदा प्रबल प्रभाव रहा। पैगम्बर साहब की मृत्यु के बाद ही वह शीघ्रता से दूर-दूर फैल गया। सौ वर्ष के भीतर इसलाम के अनुयायी पूर्वी भारत मे सिन्ध नदी से लेकर पश्चिम मे स्पेन के उत्तर को पेरीनीज की पहाडी तक फैल गये। सन् ७१६ मे टूर की लडाई मे फ्रासीसी राजा चार्ल्स मार्टल ने उन्हे रोका था। सन् १४९२ तक स्पेन देश से मूर जाति का आखिरी मुसलिम नही हटा था। वहाँ कारडोवा नगरी का विश्वविद्यालय उस समय यूरोप मे एकमात्र विद्या का केन्द्र था।

सम्भवत देश मे हैदराबाद मे सबसे अधिक शराब पी जाती थी। सारे ससार मे व्यापार करने वाले सिन्धी लोग यहाँ साल मे एक बार आते थे। खूब शराब पीते थे और अपना आयकर देते थे। मैने सक्कर देखा जहाँ सिन्ध नदी मे बाँध बाँधा गया है और नहर निकाली गयी है। इन्जीनियरी के शास्त्र का यह प्रशसनीय उदाहरण है। मैने लारखाना भी देखा जहाँ साधुबेला और अन्य परम्पराओ की कहानी प्रचलित थी। इस प्रकार से भ्रमण करना सुखकर और शिक्षाप्रद दोनो ही होता था। सुप्रसिद्ध मोहनजोदरो भी मैने इसी प्रकार देखा। इससे हमारी सभ्यता छ हजार वर्ष पुरानी सिद्ध होती है। इस प्रकार से अब पाकिस्तान जो ससार का बहुत नया 'देश' है, सबसे पुरातन हो जाता है।

मुझे कराची मे बहुत से आयोजनो मे आने का निमन्त्रण मिलता था। देश के सार्वजनिक जीवन मे पुराने सम्पर्कों के कारण मैं वहा के बहुत से लोगो को जानता था। विद्यार्थियो और शिक्षको

से भी मैं परिचित था। मैं बहुत सी सभाओ मे जाता रहता था। एक वार किसी कालेज के विद्यार्थियो ने नकल (फैंसी ड्रेस) का आयोजन किया। एक विद्यार्थी ने मेरी तरह कपडे पहन कर मेरी वोली और मुद्राओ की नकल की जिससे कि सब कोई वडे आनन्दित हुए।

जिन सभाओ मे मै बुलाया जाता था उनमे कभी-कभी मन्त्री लोग भी आते थे। एक समय मुझे याद है एक सभा मे मैं निमन्त्रित किया गया जिसमे अलीगढ के मुसलिम विद्यालय की तरह का विद्यालय बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। यही अलीगढ का विद्यालय पीछे अलीगढ मुसलिम विश्वविद्यालय हुआ। कराची के भी प्रस्तावित विद्यालय का नाम अलीगढ ही होने वाला था, पर यह मामला आगे नही वढा। सभा के अध्यक्ष मन्त्री सरदार अब्दुरर्ब निश्तर थे। उन्होने मुझे भी भाषण करने को कहा। अपने दादा जी की और अलीगढ विद्यालय के सस्थापक सर सैयद अहमद की परस्पर की मैत्री की मैने चर्चा की और वतलाया कि अलीगढ विश्वविद्यालय के उप-कुलपति सर जियाउद्दीन ने मुझसे कहा था कि विश्वविद्यालय के कोष मे प्राथमिक दाताओ मे मेरे दादा जी भी थे। जब मैंने यह बात वतलायी तो वडी करतल-ध्वनि हुई।

मुझे स्मरण है कि एक वार किसी भोज मे मेरी वगल मे कोई सुपरिष्कृत, सुशिक्षित महिला वैठी थी। पाकिस्तान शासन के किसी उच्चाधिकारी की ये पत्नी थी। मैंने पर्दे के वारे मे पूछा, 'आपकी क्या राय है'। उनका उत्तर था कि 'अब तो हम पर्दे के वाहर आ गये, फिर वहाँ जाने वाले नही है।' कराची मे तो यह ठीक था क्योकि सिन्ध की स्त्रियाँ चाहे मुसलिम हो चाहे हिन्दू अधिक पर्दा नही करती थी। पर उत्तर मे बात दूसरी थी। पजाव के पश्चिम के प्रदेशो मे और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त मे कडा पर्दा था। सन् १९५० मे जव मैं अफगानिस्तान के वार्षिक जशन मे भारत का प्रतिनिधि होकर गया था, तव मैंने न पश्चिमी पजाव मे न अफगानिस्तान मे किसी स्त्री को देखा। मुझे विशेषकर आश्चर्य

हुआ जब गाँव के खेतो मे भी ये नही देख पडती थी। पेशावर से काबुल तक मैं मोटर से गया था। खैबर पास के टोरखम सीमा को पार कर गडगडाती काबुल नदी के बगल मे सडक जाती है। उच्च श्रेणी की अफगान महिलाएँ काबुल मे कडा पर्दा रखती है, पर बाहर आने पर वे ऐसा नही करती। उनमे से बहुत सी बडी सुशिक्षित होती है और फासीसी भाषा खूब तेजी से बोलती है यद्यपि अपने देश मे बडे कडे पर्दे मे रहती है।

पेशावर की यात्रा की चर्चा करते हुए मेरे लिए कहना उचित होगा कि फरवरी सन् १९४९ मे कराची छोडने के बाद मुझे पाकिस्तान देखने का एक ही बार अवसर मिला था। वह था जब मै १९५० मे अफगानिस्तान गया था। हमारे लाहौर स्थित उप-उच्चायुक्त श्री वाई० के० पुरी कृपा कर मुझसे अमृतसर मे मिले और अपनी मोटर मे मुझे लाहौर ले गये। वहाँ से हवाई जहाज से पेशावर गया। पेशावर से अफगान सरकार की मोटरो पर काबुल गया। मैं उसी रास्ते लौटा। अमृतसर और लाहौर के बीच बाघा-अटारी नाम की कृत्रिम सीमा बनायी गयी है जो पूर्व और पश्चिम पजाब को अर्थात् भारत और पाकिस्तान को एक दूसरे से पृथक् करती है। यहाँ पर पाकिस्तानी उच्च कर्मचारी ने मुझे विदा करते हुए कहा—'महामहिम (योर एक्सलेन्सी), हम आपको धन्यवाद देते हैं कि हमारे देश मे आप आये।' यदि किसी ने मुझे पीठ मे छुरा मारा होता तो शायद उतनी पीडा न होती जितनी इन पाकिस्तानी कर्मचारी के कृपापूर्ण शिष्ट शब्दो से हुई। मैने अपने मन मे कहा—यही वह लाहौर है जहाँ सन् १९२९ मे हमने पूर्ण स्वतन्त्रता अपना लक्ष्य घोषित किया था। आज १९५० मे यह हमारे लिए विदेश हो गया।

अफगानिस्तान जाते समय मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरे पुराने साथी अब्दुल कयूम खाँ हवाई अड्डे पर मुझसे मिलने आये है। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के ये उस समय मुख्य मन्त्री थे। अपनी ग्रीष्म ऋतु की राजधानी नथियागली से ये मेरा स्वागत करने विशेष रूप से आये थे। मेरी पुत्रवधू भी मेरे साथ थी। वे

हमको अपने वासस्थान पर ले गये और मेरे लिए विशेष रूप से शाकाहारी भोजन तैयार कराकर मुझे खिलाया। पुरानी केन्द्रीय विधान सभा मे कयूम खाँ काग्रेस के उप-नेता रहे। ये लम्बे-लम्बे भाषण करते थे। बडे ऊँचे स्वर से बोलते थे। अग्रेजी शासन की कडी आलोचना करते हुए देश की स्वतन्त्रता की माँग पेश करते थे। पीछे जब पाकिस्तान सम्बन्धी आन्दोलन बहुत तीव्र हुआ तब मैंने समाचार-पत्रो मे एक दिन पढा कि ये मुसलिम लीग मे चले गये यद्यपि विधान-सभा मे पहले दिन-प्रतिदिन इसकी बडी निन्दा करते थे। सयोग की बात है कि जिस दिन मैंने यह समाचार पढा उसी दिन मुझे उनकी लिखी 'सीमा पर सोना और तोप' (गोल्ड एण्ड गन ऑन दि फ्रटियर) नाम की पुस्तक मिली जिसमे उन्होने खान अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके बडे भाई डाक्टर खान साहब की बडी प्रशसा की थी। साथ ही ब्रिटिश शासन के यहाँ के क्रूर व्यवहारो की तीव्र निन्दा भी की थी। किताब उन्होने मेरे पास भिजवायी थी।

पेशावर मे उनके यहाँ भोजन के बाद मैं उन्हे अलग ले गया और उनसे पूछा—'कयूम खाँ, मुझे यह बतलाओ कि तुम काग्रेस को छोडकर मुसलिम लीग मे कैसे चले गये'। उन्होने मुझसे साफ-साफ कहा—'मैंने देखा मेरे लिए भारत मे कोई विशेष स्थान नही है। यदि होता तो मैं अवश्य ही भारत मे ही रह जाता। मुझे लीग की सदस्यता स्वीकार करनी पडी।' जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है वर्तमान अय्यूब खाँ राज्य मे उनका तिरस्कार और अपमान हो रहा है। जब कुछ दिन पीछे मैं अफगानिस्तान से लौटा तो वे पेशावर मे नही थे। जिला मजिस्ट्रेट से वे कह गये थे कि उनकी तरफ से ये ही मेरी फिकर रखेंगे। लौटने पर मैं दोपहर के भोजन के लिए जिला मजिस्ट्रेट के घर गया। स्त्रियो के साधारण अभ्यास के अनुसार मेरी पुत्रवधू कुछ वस्तुओ को खरीदने के लिए बाजार मे जाना चाहती थी। मैंने जिला मजिस्ट्रेट से कहा कि आप कृपा कर उसके लिए समुचित प्रबन्ध कर दे। उस समय उनका मुख देखने लायक था। वे बडे असमजस मे पडे प्रतीत हुए। 'नही' भी नही

कहना चाहते थे। उनके शब्दो से मैने अनुमान किया कि साडी पहनी स्त्री का नगर के वाजार मे देख पडना भयावह है। यह स्पष्ट था कि पुत्रवधू का शहर मे जाना वे पसन्द नही करते थे यद्यपि वे मोटर व चपरासियो को तैयार होने के लिए कह रहे थे। अन्त मे वह नही गयी।

मैंने जिला मजिस्ट्रेट से पूछा कि पेशावर मे साम्प्रदायिक स्थिति कैसी है। उन्होने उत्तर दिया कि—यहाँ पूर्णरूप से शान्ति है। तव मैंने पूछा कि शहर मे कितने हिन्दू हैं। उन्होने कहा—एक भी नही। इस पर मैं यही कह सकता था कि ऐसी अवस्था मे साम्प्रदायिक समस्या पैदा ही कैसे हो सकती है। देश के विभाजन के वाद उस खण्ड से सभी हिन्दू उद्वासित कर दिये गये थे।

आधुनिक समय की जाति और श्रेणी विभाग

जब मैं सन् १९४७–४९ के अपने कराची के दिन याद करता हूँ तो खान अब्दुल गफ्फार खाँ की सौम्य मूर्ति मेरी स्मृति मे वरावर आती है। पाठको को स्मरण होगा कि गाधी युग मे देश की स्वतन्त्रता के ये बडे प्रभावशाली और सम्मानित सेनानी थे। प्रेमपूर्वक काग्रेसजनो ने इन्हे 'सीमान्त गाधी' की उपाधि दे रखी थी। ये बडे नम्र और साहसी पुरुष थे। अपने प्रान्त मे पठानो के सामाजिक उत्कर्ष के लिए इन्होने बहुत सार्वजनिक कार्य किया था। यह दुख की बात है कि इनके नेतृत्व मे पठानो ने उस जनमत गणना का वहिष्कार किया जो इस बात को जानने के लिए की गयी थी, कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के लोग पाकिस्तान मे जाना या भारत मे रहना चाहते हैं। खान अब्दुल गफ्फार खाँ पख्तू-निस्तान चाहते थे। न पाकिस्तान न हिन्दुस्तान के पक्ष मे मत देने को तैयार थे। वर्तमान नियम के अनुसार जो लोग मत नही देते उनके मूक विरोध की कोई गणना नही होती। पाकिस्तान की विजय हुई और सीमा प्रान्त उनको मिल गया।

वहाँ की प्रथम ससद् के खान अब्दुल गफ्फार खाँ सदस्य थे। इस कारण वे कराची आया करते थे। ससद् मे मैंने उनके भाषण सुने। प्रधान मन्त्री लियाकत अली खाँ उन पर और उनके विचारो पर कटु आक्षेप किया करते थे। उच्च-आयुक्तालय मे वे मुझसे मिलने भी आते थे। उन्हे देखकर मुझे वडा दुख होता था। मुझसे वे कहते थे कि 'मैं गाधी जी का निकट का साथी था और आप सबने मुझे छोड दिया'। मैं उनके हृदय को चोट नही पहुँचाना चाहता था। इस कारण यह कटु सत्य मैंने नही कहा कि 'जनमत गणना के समय

तटस्थ रहने से आप ने ही हमे छोड दिया, और जिस बडे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आप इतनी बहादुरी से लडे, और इतना कष्ट उठाया उसी को आपने पीछे त्याग दिया'। पाकिस्तान की स्थापना के समय से ही प्राय वे जेल मे रहे। उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे जो समाचार आये थे, उनसे हम सब को ही काफी चिन्ता रही। बडे सन्तोष की बात है कि अब वे छोड दिये गये, पर उनके ऊपर जो बन्धन लगाये गये है वे अनुचित और कष्टदायी प्रतीत होते है।" यद्यपि पाकिस्तान के प्रवर्तकगण भारत से बाहर जाना चाहते थे, और अपने लिए अलग देश स्थापित करने की मांग कर रहे थे, तथापि वे पख्तूनिस्तान के पक्ष मे खान अब्दुल गफ्फार खां की बातो को सुनने को तैयार नही है यद्यपि इनकी दलीले वैसी ही है और उसी भाषा मे प्रस्तुत की जा रही है जैसी पाकिस्तान के लिए की गयी थी। इस कारण उन्हे पन्द्रह वर्ष तक बन्दी रहना पडा। जो लोग अपने को पठान कहते है वे भारतीय मुसलिम से जाति व परम्परा मे अपने को पृथक् मानते है। पाकिस्तान के पजाब, सिध और बगाल प्रान्तो के मुसलमान तो उसी मनुष्य जाति के है जिसके हिन्दू है। वास्तव मे आज की स्थिति मे खान अब्दुल गफ्फार खॉ की दलील विभाजन से पहले पाकिस्तान आन्दोलन के नेताओ की दलीलो से अधिक न्यायसगत है। पर पाकिस्तान तो शारीरिक बल प्रयोग मे विश्वास करता है। इस कारण खान अब्दुल गफ्फार खॉ को बन्दीगृहो मे रहना पडा। पर उनकी आत्मा अभी भी वैसी ही निर्भीक बनी हुई है। ७० वर्ष से अधिक इनकी अवस्था है। उनका स्वास्थ्य बहुत खराब रहा। उनके दु ख और एकान्तवास मे भारत की सहानुभूति उनके साथ है।

सन् १९४८ मे पूर्वी बगाल की अपनी यात्रा इस समय मुझे याद आ रही है। उच्च-आयुक्त की अवस्था मे मै वहॉ एक ही बार जा सका। दिल्ली के विदेश मन्त्रालय ने मेरा कार्य सिन्ध तक ही सीमित कर दिया था। उस यात्रा मे चटगॉव भी गया था। वहॉ बगाल के बडे

---

* अब खान अब्दुल गफ्फार खॉ अफगानिस्तान मे निवास कर रहे है।

काग्रेसी नेता श्री यामिनी मोहन सेन-गुप्त की पत्नी श्रीमती नेली सेन-गुप्त मुझे मिली। ये अग्रेज महिला है। उनके दोनो पुत्र भारत मे ही काम करते रहे। पर वे स्वय चटगाँव मे ही रह गयी। वे बडे प्रेम और उत्सुकता से पुराने दिन याद करती थी। सार्वजनिक कार्यों मे अपने पति की ये हर प्रकार से सच्ची सगिनी थी। पति पत्नी मे बडा प्रेम था। उन्होने मुझे चाय पीने के लिए अपने घर निमत्रित किया। कुछ पुराने काग्रेसी दोस्तो को भी मिलने के लिए उस अवसर पर बुलाया। पीछे मेरा उनसे कुछ पत्रव्यवहार भी हुआ। पर सब सम्पर्क शीघ्र ही समाप्त हो गया। उनके एक पुत्र की कलकत्ते मे मृत्यु हो गयी। दूसरे से बम्बई मे मुझसे हाल मे ही मुलाकात हो गयी थी। वे स्वय चटगाँव मे ही रहती हैं। पूर्वी बगाल की विधान सभा की सदस्या भी वे कुछ समय तक रही। नयी स्थिति के अनुकूल उन्हे अपने को बनाना अवश्य ही कठिन था। वे अपने पति के चटगाँव के पुराने छोटे से मकान मे शान्ति का जीवन व्यतीत कर रही है। कराची और सिध के अन्य स्थानो मे मुझे बहुत से पुराने मुसलिम दोस्त और साथी मिलते थे। स्थिति से वे दु खी थे। स्थिति को ठीक प्रकार से समझने मे उन्हे कठिनाई हो रही थी। स्वतन्त्रता के कितने ही पुराने योद्धाओ को पाकिस्तान के शासको ने कष्ट दिया। वे तो स्वय बडे सस्ते मे शासन करने के लिए देश पा गये, पर जिनके त्याग और परिश्रम से यह सम्भव हुआ, उन्ही को वे सताते रहे। कैसी कष्टदायी यह स्थिति है।

जैसा मैंने पीछे लिखा है, राजदूतो का बहुत समय पार्टी और भोज ऐसे सामाजिक आयोजनो मे बीतता है। मुझे भी भारत की तरफ से इनका आयोजन करना पडता था। मेरी पुरातन काशी नगरी मे अभी तक पुरानी परम्परायें चली आती है। उन्ही से मै परिचित रहा हूँ। वहाँ यह प्रकार रहा है कि भोजो के समय आये हुए अतिथियो के नौकरो सिपाहियो आदि को दोनो मे मिठाई, नमकीन पहले ही दे दी जाती है। इसमे दो लाभ है। गरीब लोगो को कुछ ऐसी चीजे मिल जाती है जो उन्हे साधारणत घर पर नही मिल सकती। इसे वे ले जाकर अपने बाल-बच्चो को भी देते है। साथ ही यदि आतिथेय, अतिथियो को खिलाने के बाद इन्हे भोज देना

चाहे तो यह सम्भव नही होता क्योकि अतिथि लोग जल्दी चले जाना चाहते है। इस प्रकार से हमारे पुराने तथाकथित सामन्तवादी (फ्यूडल) समाज मे गरीब आश्रितजनो को एक प्रकार से प्रथम स्थान दिया जाता था। उच्च-आयुक्त और पीछे राज्यपाल के पद से जो पार्टियाँ मैं दिया करता था उनमे इसका प्रबन्ध रखता था कि गाडियो के चालको और अन्य नौकरो आदि को चाय ओर कुछ मिठाई-नमकीन अवश्य मिल जाय। एक बार कराची मे कुछ चालको का मण्डल मुझसे मिलने आया। उनको देखकर जब मैंने आश्चर्य प्रकट किया, तो उन्होंने मुझसे कहा कि—'आपकी पार्टी मे जो खाने-पीने को हमको मिला उसके लिए धन्यवाद देने आये हे। जब हम गवर्नर जनरल जिन्ना साहब की पार्टी मे अपने मालिको को ले जाते है और वहाँ बाहर घन्टो खडे रहते हैं, तो हमे कोई पानी भी पीने को नही देता'। यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ क्योकि हिन्दुओ से कही अधिक मुसलमान मेहमाननवाजी बरतते है। उनमे भ्रातृ-भाव भी हिन्दुओ से अधिक है। मालूम पडता है कि पश्चिम का लोकतन्त्र छोटे लोगो के प्रति इतनी साधारण सद्भावना भी नही रखता। उसी की नकल हम अपने देश मे उल्लासपूर्वक कर रहे हे।

एक बार मैंने होटल मे बहुत बडा भोज दिया। अपने उच्च-आयुक्तालय मे इसका प्रबन्ध नही कर सकता था यद्यपि मै इसे पसन्द नही करता था कि किसी होटल मे मै अपने अतिथियो को भोजन कराऊँ। होटल अधिकारियो से मैने कह रखा था कि अतिथियो को भोजन कराकर मोटरो के चालको को भी कुछ भोजन-पानी अवश्य दे दे। जो पीछे बिल (खर्च का पुर्जा) मेरे पास आया, उसके अनुसार अपने अढाई-तीन सौ मेहमानो के लिए मुझे तीन हजार रुपया देना पडा। पर चालको के चाय-पानी के लिए केवल ८० रुपया माँगा गया। जब मेरे उप-उच्चायुक्त को यह मालूम हुआ तो उन्हे बुरा लगा। उन्होने मुझसे कहा कि ऐसे अवसरो पर चालको आदि को कुछ नही दिया जाता और आपको भी इस प्रथा के प्रतिकूल नही चलना चाहिये। पर मुझे तो अपना ही रास्ता अच्छा लगता है। उप-उच्चायुक्त को अपना मत रखने की अवश्य

ही स्वतन्त्रता थी। मुझे अपने प्रकार का पूरा पुरस्कार मिल गया जब आस्ट्रेलिया के व्यापार-आयुक्त (ट्रेड कमिशनर) ने पीछे मुझसे कहा कि—'मेरा चालक बडे धन्यवादपूर्वक मुझसे कह रहा था कि आपकी पार्टी मे उन्हे भी कुछ खाने-पीने को मिला। ऐसा कही दूसरे स्थान पर नही हुआ, यद्यपि कोई न कोई पार्टी प्रतिदिन होती रहती है। मुझे प्रसन्नता है और मैं कृतज्ञ हूँ कि आपने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया'।

मैंने अपने प्रधान मन्त्री को इस सम्बन्ध मे लिखा और उनसे प्रार्थना कि आप सभी 'दूतालयो और उच्च-आयुक्तो को लिख दें कि अतिथियो के चालको, सिपाहियो और नौकरो को ऐसे अवसरो पर न भूला जाय'। प्रधान मन्त्री को यह प्रवन्ध पसन्द आया। पर उनके सचिवालय का यह विचार था कि यह प्रकार व्यवहार्य नहीं है। वास्तव मे कुछ हुआ नही। दु ख है कि दिल्ली मे भी यह प्रथा नही वरती जाती। मैं नही कह सकता कि क्या दिक्कत है। न उच्च-आयुक्त न राज्यपाल की हैसियत मे मैंने कोई दिक्कत व कठिनाई अनुभव की। घर पर भी ऐसा प्रवन्ध करने मे कोई कठिनाई नही होती। मैं नही कह सकता कि दूसरो को क्यो परेशानी होती है। अच्छा हो यदि भारत इस दिशा मे नया उदाहरण उपस्थित करे।

जव कभी उच्च-आयुक्तालय के वाहर मुझे पार्टी देनी पडती थी और अक्सर ही देनी पडती थी, क्योकि मेरे वासस्थान मे पर्याप्त प्रवन्ध नही हो सकता था और होटलो की सहायता मुझे ऐसे अवसरो पर लेनी ही पडती थी, तव मैं यह चाहता था कि मेरे कार्यालय के सहायक भी इनमे आवें। मेरे उप-उच्चायुक्त ने मुझसे वडी गम्भीरता से कहा कि 'ऐसे मामलो मे विशेष प्रकार का जातिभेद माना जाता है। अमुक पद के नीचे के कर्मचारी नही निमन्त्रित किये जाते'। हमारे ऐसे पुराने आचार-विचार के लोग इस प्रकार का श्रेणीगत भेदभाव नही मानते। मैं जानता हूँ हमारे समाज मे जन्मगत जाति-व्यवस्था है जिसने कि आज अनुचित और कष्टप्रद रूप धारण कर लिया है, पर इसमे भी किसी को भोजन

पानी से वंचित नही किया जाता चाहे अतिथि की जाति कितनी ही उच्च और उनके नौकरो की जाति कितनी ही निम्न क्यो न हो। भोजन करने को पृथक् प्रबन्ध किया जाय पर खाना देने से इकार नही किया जाता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज के युग मे लोकतन्त्र और समाजवाद की चर्चा बहुत होती है पर वास्तविक जीवन मे उसके मौलिक आदर्श और सिद्धान्त नही कार्यान्वित किये जाते। हम उन्हे बौद्धिक दृष्टि से ही स्वीकार करते है पर उसकी भावुकता के आधार को भूल जाते है। वह तो दया और उदारता ही है। यदि हमारे नेतागणो का मूल्याकन ठीक हो तो जो बहुत से कटु दृश्य हम आज देख रहे है, उन्हे न देखे, और न हम वैसी विषम स्थितियो का सामना करे जैसा कर रहे है। यह समझ रखना चाहिए कि यदि पुरातन भारत की जाति-व्यवस्था ठीक तरह से काम मे लायी जाय तो हम मनुष्यो मे अधिक समानता और परस्पर का सौहार्द पावेगे। लोकतन्त्र और समाजवाद जिस प्रकार से आज कार्यान्वित हो रहा है उसमे तो विशिष्ट पुरुष (वी० आई० पी०) और सभाओ, भोजो आदि मे ऊपर नीचे बैठाने (प्रोटोकोल) के कठिन नियम है। इसमे सरकारी कर्मचारियो के वर्ग एक से लेकर चार श्रेणी तक विभाजित किये गये है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रेणीगत भेदभाव इस प्रकार से माना गया है कि उसमे अन्तर किया ही नही जा सकता। अपनी उत्तमोत्तम विचारशैलियो की घोषणा मात्र से हम सन्तुष्ट है। उन्हे अपने जीवन मे परिणत करने का हमे कुछ भी विचार नही है।

कुछ अन्य अनुभव

एक बार हंसते हुए मैंने लियाकत अली साहब से कहा, 'मैंने पुरुषों को अपनी पत्नियों को बदलते हुए तो देखा है, पर अपनी माता को बदलते किसी को नहीं पाया। आपने अपनी माता को ही बदल दिया'। मेरी बात से उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि 'मैंने तो ऐसा नहीं किया'। इस पर मैंने कहा कि 'कल तो आपकी माता भारत भूमि ही थी, अब आपने पाकिस्तान को माता माना है'। इस पर वह कुछ हंस ही सकते थे। जब मैंने यह बातचीत राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद को बतलायी तो वह खूब हंसे। उन्होंने कहा कि 'जो कुछ तुमने नवाबजादा से कहा बिलकुल ठीक और उचित था'।

जब मैंने सुना कि लियाकत अली खां साहब जैसे सज्जन की हत्या की गयी तो मुझे बड़ा ही धक्का लगा। ऐसे सहृदय पुरुष के कोई व्यक्तिगत शत्रु तो हो ही नहीं सकते थे। मुझसे यह कहा गया था कि बहुत से पुरातनवादी मुसलमान उनसे इस कारण रुष्ट थे कि उनकी पत्नी पर्दा नहीं करती थी। मुझसे यह भी कहा गया है कि इस यात्रा में जब वह कराची से लाहौर गये, बेगम लियाकत अली भी उनके साथ जाने वाली थी, पर उन्होंने पीछे राय बदल दी और नहीं गयी। ऐसा मालूम पड़ता है कि दोनों पति-पत्नी की हत्या करने का षड्यन्त्र रचा गया था। इस भीषण कुकृत्य का रहस्य नहीं खुला। बेगम साहिबा स्वयं बहुत से बड़े-बड़े लोगों को इसके लिए जिम्मेदार बतलाती हैं। हत्यारे को उसी समय भीड़ ने टुकड़े-टुकड़े कर दिया, इस कारण कोई बात साबित न हो सकी, न किसी पर अभियोग ही लगाया जा सका।

कश्मीर के सम्बन्ध में पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री को बड़ा क्षोभ था। वह मुझसे कहते थे कि 'जनमतगणना की कोई आव-

श्यकता नही है'। हमे केवल गिन लेना चाहिए कि वहाँ कितने मुसलमान रहते है। यह समझ लेना चाहिए कि वे सब पाकिस्तान के पक्ष मे है। इसी प्रकार हिन्दुओ को भी गिन लेना चाहिए और मान लेना चाहिए कि ये हिन्दुस्तान के पक्ष मे हैं'। उन्होने यह भी कहा कि 'आप सब बौद्धो को भी भारत के पक्ष मे समझ लीजिये यद्यपि मै यह जानता हूँ कि उनमे से बहुत से पाकिस्तान के पक्षपाती है'। इस प्रकार से हिसाब कर वह चाहते थे कि कश्मीर का भाग्य-निर्णय कर दिया जाय।

उनका कहना था कि 'पाकिस्तान के लिए कश्मीर आवश्यक है, भारत के लिए यह व्यर्थ है'। वह कश्मीर को इसी कारण चाहते थे कि वह पाकिस्तान से सटा हुआ है। मेरे कुछ कहने के पहले ही उन्होने यह भी जोड दिया कि 'मै पूर्वी बगाल को पाकिस्तान का अग कभी भी नही मानता अगर समुद्र के रास्ते उसका पश्चिमी पाकिस्तान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होता'। अवश्य ही ये सब विचित्र दलीले है, पर जहाँ लोग भावुकता के आवेश मे रहते है, वहाँ बुद्धि का कोई काम नही रहता। यही हममे से सभी की हालत है। किसको दोष दिया जाय ?

कराची मे मेरे पास जूनागढ की बेगम साहिबा अक्सर आती थी। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ, नवाब साहब ने इन्हे पृथक् कर दिया था। वे मेरे पास अपने पुत्र के साथ आती थी और कहती थी कि 'आप दिल्ली के राज्य मन्त्रालय (स्टेट मिनिस्ट्री) अर्थात् सरदार वल्लभभाई पटेल से मेरी सिफारिश करे जिससे इस नवयुवक को मान्यता दे दी जाय और उसे जूनागढ के नवाब की गद्दी पर स्थापित कर दिया जाय'। उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि 'हम भारत मे सम्मिलित होना चाहते हे'। मुझे स्मरण है कि मैंने सरदार साहब को यह सब लिखा। उनका उत्तर था कि 'इस कुटुम्ब की भलाई इसी मे है कि वह दूर रहे। यदि वे लोग भारत मे आवेंगे तो सम्भवत. गिरफ्तार कर लिये जायेंगे'। नवाब साहब के एक दामाद भी मेरे पास आया करते थे। अपने श्वसुर का सदेश लाते थे कि 'आप सरदार साहब से प्रार्थना करे कि नवाब साहब

कि कुत्तों की पूरी फिकर की जाय। अन्य देशी रजवाड़ों की तरह इन नवाब साहब ने भी बहुत से कुत्तों को पाल रखा था। उन्हें कुत्तों का बहुत शौक था। इन पर वे अत्यधिक व्यय करते थे। बहुत दाम देकर विभिन्न जाति के विदेशी कुत्तों को खरीदते थे और उनका पालन-पोषण बड़े ऊँचे स्तर से करते थे। कहते हैं बड़ी धूम-धाम से ये कुत्तों का विवाह भी कराया करते थे। इनकी बारातें निकलती थीं जिसमें बहुत नाच-गाना होता था जैसा कि धनिकों के विवाहों के समय साधारण प्रकार से किया जाता है।

सरदार वल्लभभाई पटेल से यह सब बातें मैंने दिल्ली में एक बार कहीं। उन्होंने मुझसे कहा कि 'जब हमारे प्रतिनिधि जूनागढ़ के महल में गये तो वहाँ के गोल कमरे (ड्राइंग रूम) की प्रत्येक कुर्सी पर उन्होंने कुत्ता बैठा हुआ पाया। अवश्य ही भारत शासन नवाब साहब के अनन्त कुत्तों का प्रबन्ध नहीं कर सकता'। मैं नहीं कह सकता कि उनकी क्या गति हुई। मुझसे कहा गया था कि जब नवाब साहब अपने दलबल के साथ यकायक हवाई जहाजों से कराची गये, तो अपने साथ जितने कुत्ते ले जा सके लेते गये, बहुत से पीछे रह गये। यहाँ यह लिखना उचित प्रतीत होता है कि भारत में जूनागढ़ ही एक ऐसा स्थान है जिसके गीर नाम के जंगलों में अब भी सिंह बचे हैं। इनकी विशेष रूप से रक्षा की जाती है। कुछ दिन पहले इनकी संख्या केवल तीन रह गयी थी। इनका शिकार करने की मनाही है। किसी समय देश में सिंह ही सिंह थे। कहा जाता है कि अकबर दिल्ली के आसपास सिंहों का शिकार किया करते थे। अब चारों तरफ शेर अर्थात् व्याघ्र ही रह गये हैं। सिंहों को उन्होंने मार डाला। सिंह लुप्त हो गये। सिंह बड़ा सभ्य जन्तु है। इसको भोजन और आराम करते हुए जंगलों में पास से भी देखा जा सकता है।

जूनागढ़ ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व का स्थान है। यहीं पर प्रसिद्ध प्रभास तीर्थ है जहाँ श्रीकृष्ण का देहावसान हुआ था। कहते हैं वे सोये हुए थे, उनके पैर के लाल तलवे को किसी व्याध ने किसी जन्तु का समझकर इन पर तीर चलाया और इनकी मृत्यु

हो गयी। यही पर सोमनाथ का मन्दिर भी है जिसे महमूद गजनी ने ११वी शताब्दी मे ध्वस किया था। यहाँ पर पत्थर का एक बहुत बडा खण्ड देख पडता है जिस पर अशोक के समय से लेकर पीछे की कितनी ही ऐतिहासिक घटनाएँ अकित है। देश के विभाजन के पश्चात् जनमतगणना कर जूनागढ भारत मे सम्मिलित हुआ था। यहाँ के शासक मुसलिम नवाब रहे। मुझे मालूम हुआ है कि पाकिस्तान के मानचित्रो मे जूनागढ उसी का अग दिखलाया जाता है। इस बात पर बडा जोर दिया जाता है कि नवाब साहब को पाकिस्तान मे सम्मिलित होने की मान्यता नही दी गयी और वहाँ जनमतगणना की गयी, पर कश्मीर के महाराज का भारत मे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया गया और वहाँ जनमतगणना नही की जा रही है। मै इस मामले के गुण-दोप मे नही जा रहा हूँ। इसको केवल यहाँ पर लिख देता हूँ क्योकि यह दलील बार-बार मेरे सामने उपस्थित की गयी।

उच्च-आयुक्त के पद से मुझे बहुत से दु खद दृश्यो को यहाँ देखना पडा। बहुत से मुसलमान जो अपने आरम्भिक जोश मे पाकिस्तान चले आये थे वे वापस भारत मे अपने घरो पर जाना चाहते थे। जो हिन्दू पाकिस्तान से भारत आये उनमे से कोई भी वापस नही जाना चाहता था। जब पाकिस्तान मे गये हुए बहुत से मुसलमान भारत मे वापस जाना चाहते थे तो भारत शासन को अवश्य ही बडा असमजस हुआ। उसने चाहा कि जो मुसलमान वापस आना चाहे उन्हे वापस आने दिया जाय, पर यह तो स्पष्ट था कि उन सबको वापस नही लिया जा सकता था। करोडो पजाबी और सिन्धी हिन्दुओ को हमे बसाना था। उनके रहने के लिए ही स्थान निकालना दुस्तर था। हमारे लिए यह सम्भव नही था कि हम सब मुसलमानो को भी बसाये रहे यद्यपि हमे उनसे कोई द्वेष नही था।

मुसलमानो को पाकिस्तान के नये राज्य मे जीविका के साधन नही मिलते थे और अपने पुराने देश मे जो उनका घर और व्यवसाय था उसे वे खो चुके थे। मै अपनी तरफ से चाहता था कि बीच का रास्ता पकडे रहूँ। मै नही कह सकता कि कहाँ तक मुझे सफलता

मिली। मेरे लिए यह कहना उचित होगा कि पजावी और सिन्धी हिन्दुओ के प्रति मुझे वडा आदर और सम्मान है। उन्होने अपने पैतृक घरो को छोडकर विभाजन के वाद के भारत मे शरण ली। अपने पुरुषार्थ से उन्होने अपने को यहाँ स्थापित किया। वडे उद्योग और साहस से उन्होने काम लिया। पूर्वी वगाल के हिन्दुओ को अवश्य ही वहुत कष्ट हुआ और हो रहा है। वे वडे असहाय है। पजावी किसी से दान नही लेते थे। अपनी आन्तरिक शक्ति और योग्यता पर ही भरोमा करते थे। इससे शासन को शरणार्थियो की समस्या को हल करने मे वडी सहायता मिली, नही तो उसका समाधान हो ही नही सकता था।

कहानी करुण है, पर उसे कह देना उचित होगा। जव मैं १९४७–४९ के पाकिस्तान की सच्ची दशा वतला रहा हूँ, मैं सव वात स्पष्ट रूप से कहना उचित समझता हूँ। हम जानते हैं कि उस समय दोनो तरफ के लोग अपने आपे के वाहर हो गये थे। इसके कारण कितनी ही हत्याएँ हुई और हर प्रकार का वल-प्रयोग होता रहा। इसका जो एक वहुत ही खराव रूप था वह यह था कि हिन्दू और सिख पुरुषो ने मुसलिम स्त्रियो का और मुसलिमो ने हिन्दू और सिख स्त्रियो का वलपूर्वक हरण किया। मेरा यह कर्तव्य था कि मैं यह प्रयत्न करूँ कि ऐसी सव स्त्रियाँ अपने-अपने घर वापस कर दी जायें। कहते हुए दु ख होता है पर वस्तुस्थिति यह थी कि जव हिन्दू स्त्रियो को निकाल कर भारत भेजा जाता था तो उनके कुटुम्व इन्हे स्वीकार नही करते थे। ऐसी अवस्था मे अवश्य ही वे चाहती थी कि हमे अपने नये मुसलिम घरो मे पहुँचा दिया जाय जहाँ उनके साथ उचित व्यवहार किया जाता था। जिन मुसलिम स्त्रियो को भारत से वापस लाया जाता था, उन्हे उनके कुटुम्व फौरन स्वीकार कर लेते थे। यदि वे गर्भवती भी होती थी तो कोई प्रश्न नही पूछा जाता था। माता और सन्तति दोनो को ही इसलाम समाज मे ले लिया जाता था।

युगो से हिन्दू समाज इस प्रकार की असहिष्णुता और सकीर्णता से पीडित रहा है। श्री रामचन्द्र के समय को याद किया जाता है

जब उन्होने अपनी प्रिय पत्नी सीता को त्याग दिया—क्योकि किसी ने यह कहा कि उन्हे अपने यहाँ रखना उचित नही है जब वे किसी दूसरे के आश्रय मे बहुत दिनो तक रह चुकी थी। श्री रामचन्द्र जी नाना प्रकार के कष्टो को सहकर उन्हे लका से वापस लाये थे, और उनकी कडी अग्नि-परीक्षा भी हो चुकी थी। तथापि तथाकथित लोकमत को स्वीकार कर रामचन्द्र ने सीता जी को वनो मे छोड दिया। यह दु खद परम्परा अब भी चली जा रही है। यदि हिन्दू और हिन्दू धर्म कष्ट उठा रहे है तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

इस सम्बन्ध मे एक घटना को उद्धृत करना उचित होगा। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का पत्र मुझे मिला जिसमे उन्होने मुझसे कहा कि 'आप कराची मे अमुक स्थान पर अमुक समय चले जाइयेगा। वहाँ पर एक मुसलिम लडकी आपके पास लायी जायगी। आप लडकी से पूछकर मुझे सूचित कीजिए कि उसकी क्या आतरिक इच्छा है। वह वही रहना चाहती है या भारत वापस आना चाहती है'। मैं निर्धारित स्थान पर निर्धारित समय पर गया। एक घण्टे तक अपनी मोटर पर बैठा रहा। कोई नही आया। वापस आकर मैने श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को इसकी सूचना दी। उन्होने दु ख प्रकट किया कि उन्होने व्यर्थ ही मुझे इतना कष्ट दिया और सम्भवत उच्च-आयुक्त के पद को ठेस पहुँचायी। मुझे इन सब बातो की कोई चिन्ता नही रही। मैं तो अपना कठिन कार्य करना भर जानता था। उसको कोई कष्ट नही मानता था, न अपने पद की कोई झूठी शान रखता था।

समय गम्भीर था। बडे विनय से यही कह सकता हूँ कि जो कुछ सेवा मैं कर सकता था उसे करने का अपनी शक्ति भर बराबर प्रयत्न करता रहा। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को यह दु ख हुआ कि जिन लोगो ने यह वायदा किया था कि वे लडकी से बातचीत करने का मुझे मौका देगे, उन्होने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नही की। पीछे उन्होने इस घटना की कहानी एक हिन्दी पत्रिका मे लिखी जिसे सयोगवश मैने पढा। उन्होने लिखा कि यह मुसलिम लडकी हिन्दू घर मे विवाहिता के रूप मे स्वीकृत हुई और प्रसन्न रही।

पर मौलाना हिफ्ज-उर्रहमान और दूसरे ऐसे राष्ट्रवादी मुसलिम इस चिन्ता मे थे कि उसे पाकिस्तान वापस कर दिया जाय। एक दिन वे इस लडकी को श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के यहाँ से यह कह कर ले गये कि उसकी इच्छाओ को जान और समझ कर वे उसे वापस लावेंगे। पर वास्तव मे उन्होने जल्दी मे वायुयान मे उसे कराची भेज दिया।

श्रीमती रामेश्वरी लिखती है कि 'मेरी आत्मा को इससे बहुत कष्ट हुआ और मैं आज भी चिन्ता कर रही हूँ कि लडकी को उस प्रकार मौलाना साहब को सुपुर्द कर मैंने ठीक किया या नही'। इस कहानी मे उन्होने मेरा नाम नही लिखा है। उन्होने केवल इतना लिखा है कि पाकिस्तान के भारतीय राजदूतालय को इस मामले मे सहायता देने के लिए उन्होने कहा था, पर कोई परिणाम नही निकला। मेरे उपर्युक्त वाक्यो से पूरी कहानी का पता लग जाता है। मुसलिम मौलानाओ और हिन्दुओ के आचार-विचार मे जमीन आसमान का अन्तर है। अब भी हिन्दुओ को चेतना चाहिए। अपने मन मे निश्चय करना चाहिए कि हम वास्तव मे सच्चे है या नही। हम उन्नति करना चाहते है या इसी प्रकार से हीन दशा मे पडे रहना चाहते हैं। अपने महत्व की प्रशसा मे बडी-बडी बाते कहने मे और दूसरो को अपशब्द सुनाने से कोई समस्या हल नही होती और न हम किसी प्रकार से मानव समाज का उत्कर्ष ही कर सकते हैं।

कार्य अधूरा रह गया

सदा के लिए मुझे इस बात का सन्ताप रहेगा कि जो कार्य महात्मा गाधीजी ने मुझे विशेष प्रकार से सुपुर्द किया था वह मै नही कर सका। मै पहले लिख चुका हूँ कि उन्होने मुझसे कहा था कि 'सिन्ध के थारपारकर खण्ड के जो दो लाख हिन्दू कृषक है उनकी विशेष रूप से चिन्ता रखना'। उनका कहना था कि 'नगरो के रहने वाले तो सभी सिन्धी हिन्दू चले आवेगे, पर ये गरीब लोग छट जायँगे। ये असहाय हो जायँगे। अपनी फिकर न कर सकेगे'। इसी खण्ड मे अमरकोट का स्थान है। जब सोलहवी शताब्दी मे शेरशाह ने हुमायूं को दिल्ली की गद्दी से निकाल दिया था तब यहाँ अकबर का जन्म हुआ था। यह कहना उचित होगा कि यहाँ के लोग यद्यपि हिन्दू है पर धर्म का प्रभाव उनके ऊपर बहुत कम है और उसके सस्कारो आदि का ये पालन भी नही करते। यह आशका थी कि ये इसलाम धर्म मे बहुत सरलता से चले जायँगे। मै नही कह सकता कि आगे चलकर इनकी क्या दशा हुई। अपने नगर वाले भाइयो की ही तरह ये भी चले जाना चाहते थे। पर वे कृषि के लिए ठीक वैसी ही भूमि चाहते थे जैसी थारपारकर मे उनकी थी। ऐसी भूमि तो वहाँ से सटे हुए जोधपुर राज्य मे ही थी। मै दो बार जोधपुर गया। वहाँ के मुख्य मन्त्री अपने मित्र श्री जयनारायण व्यास से बहुत आग्रह किया कि 'आप इन लोगो को आने दे। आपके राज्य मे बहुत भूमि है'। जोधपुर राज्य की सहानुभूति मुझे नही मिली। वे 'बाहर वालो' को अपने यहाँ नही बसाना चाहते थे। इस स्थिति के सम्बन्ध मे मैने सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखा था। उन्होने यह आज्ञा दे दी थी कि थारपारकर के जो कृपक अपने बगल की भारत की भूमि मे जाना चाहे उन्हे उच्चायुक्त की अनुमतिपत्र की आवश्यकता न होगी। इस प्रकार बिना कराची आये ही वे सीमा

पार कर चले जा सकते थे। जोधपुर राज्य का भाव उनके आने मे बाधक हुआ। मुझे यह भी मालूम हुआ कि पाकिस्तान राज्य को पता लग गया कि यहाँ से कृषको के जाने का प्रवन्ध किया जा रहा है। उन्होने सारी सीमा पर पुलिस का पहरा बैठा दिया जिससे ये लोग जाने न पावे। सिन्ध के लिए ये बहुत उपयोगी थे। इन्ही के हाथ मे वहाँ की खेती थी। राज्य उन्हे नही ही जाने दे सकता था। मैंने कई बार चाहा कि मुझे मालूम हो कि यहाँ की इस समय ठीक दशा क्या है। मैं नही कह सकता कि हमारा वर्तमान उच्च-आयुक्तालय उनके हित-अहित मे कुछ रुचि रखता है या नही। मुझे दु ख है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं उनके लिए कुछ नहीं कर पाया। इसका तो मुझे कष्ट बना ही रहेगा कि इस प्रसग की महात्मा गाधी की इच्छा की पूर्ति न कर सका।

जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ भारत के सब ही अग्रेज शासक पाकिस्तान के पक्ष मे थे। पाकिस्तान उनका बनाया हुआ था। भारतीय मुसलिमो ने उसकी सृष्टि नही की थी। यदि अग्रेजो का पूर्ण समर्थन जिन्ना साहब को न मिला होता तो वे इस सम्बन्ध मे कुछ भी न कर सकते। स्वराज्य की स्थापना के समय जब अग्रेज अफसरो को यह सुविधा दी गयी कि वे अत्यधिक मुआवजा लेकर निर्धारित समय के पहले ही अपनी नौकरी से स्तीफा दे सकते हैं, तो प्राय सब ने ही इसका लाभ उठाया और पर्याप्त रुपया लेकर चले गये। भारत मे तो दो ही चार रह गये। जो अब भी नौकरी करना चाहते थे, उन्होने पाकिस्तान जाना स्वीकार किया। वहाँ पर वे राज्यपाल (गवर्नर), प्रधान आयुक्त (चीफ कमिशनर) और कराची के सचिवालय मे भिन्न-भिन्न प्रकार के पदो पर रहे। इनमे से बहुतो को मैं दिल्ली से जानता था। उनसे मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बना रहा। पश्चिमी पजाब के राज्यपाल सर फासिस म्यूडी ने अपनी आई० सी० एस० की नौकरी मेरी जन्म नगरी काशी मे ही आरम्भ की थी। मैं उन्हे सन् १९२१ से ही जानता था। स्थानीय नगरपालिका के हम दोनो ही सदस्य थे। वे नियोजित किये गये थे, और मैं निर्वाचित हुआ था। उन्होने

अपनी गवर्नरी पीछे छोड दी, और मुझे लिखा कि 'मैं लियाकत अली के साथ काम नही कर सकता, इसलिए जाता हूँ'। दूसरे भी एक-एक कर चले गये। उनकी वडी-वडी आशाओ और आकाक्षाओ पर पानी फिर गया। पर इसमे कोई सन्देह नही कि जिन्ना साहव और लियाकत अली साहव का प्रभाव अपने सभी कर्मचारियो पर अत्यधिक रहा। यूरोपियनो को भी उनका सिक्का मानना पडता था। गवर्नर जनरल के एक भोज मे वलूचिस्तान के अग्रेज चीफ कमिशनर ने—नाम मैं भूल रहा हूँ—मुझे विश्वास दिलाया था कि कोई कठिनाई मुझे हो तो वे मुझे सहर्ष सहायता देगे। पर जव उनके अधीन क्षेत्र के हिन्दुओ के कष्टो के वारे मे मैंने उन्हे लिखा तो उन्होने अपने हाथ से पत्र लिखकर मुझे उत्तर दिया—सम्भवत वह किसी आशुलिपिक पर भी विश्वास नही कर सकते थे—कि 'मुझे तो आज्ञा माननी पडती है। मै कुछ नही कर सकता'। उन्होने यह भी लिखा कि 'वहुत सम्भव है कि आपको कुछ भ्रम हुआ हो क्योकि वास्तव मे आपसे जो मेरी वाते राजभवन मे हुई थी उसका यह अर्थ नही था जो आप लगा रहे है'।

भारत शासन के अन्तिम अग्रेज वित्त सदस्य सर आर्चिवाल्ड रौलैण्ड ने १९४६ के अपने आय-व्ययक भाषण मे दिल्ली मे कहा था कि मै आगामी वर्ष यहाँ नही रहूँगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि वे ऐसा क्यो कह रहे है। पर उनकी बात सत्य निकली क्योकि दूसरे वर्ष मुसलिम लीग के लियाकत अली साहब ही वित्त सदस्य रहे। रोलैण्ड साहव पीछे पाकिस्तान शासन के वित्त परामर्शदाता होकर आये। मुझसे उनकी मुलाकात वहाँ हुई। वे पाकिस्तान के वडे भक्त रहे और मुझसे उन्होने कहा कि भारत को सम्हल कर चलना चाहिए। उसके और पाकिस्तान के बीच मे जो पाँच हजार मील की सीमा है, उस पर बरावर पुलिस का पहरा रहेगा जिससे कि भारत की कुदृष्टि से पाकिस्तान की रक्षा हो'। इसी से स्पष्ट है कि अग्रेज पाकिस्तान का कितने उत्साह से समर्थन करते थे, पर वे भी वहाँ अधिक दिन नही टिक सके। वे वहुत ही अनुशासन-प्रिय थे और जिस भक्ति और परिश्रम के साथ वे सयुक्त भारत मे

अपने अग्रेजी शासन की सेवा करते थे वैसे ही पाकिस्तान मे अपने नये मालिको की भी करते थे। जैसे वे भारत से चले गये थे वैसे पीछे पाकिस्तान से भी चले गये। पर आज भी उनकी सहानुभूति उसी बच्चे के साथ है जिसको उन्होने जन्म दिया था। यह बात उन्ही अग्रेज अफसरो तक सीमित है। अग्रेज लोग तो हमारे साथ मित्रता ही रखते है और उन्होने वर्तमान स्थिति को स्वीकार कर लिया है जिसमे उनके साम्राज्य का उज्ज्वल सितारा ही अस्त हो गया।

मै लिख चुका हूँ कि किस प्रकार से कितने ही प्रभावशाली सिन्धी जिन्हे कि मेरे उच्च-आयुक्तालय ने हर तरह से सहायता दी थी, जिनकी सम्पत्ति का उन्हे पूरा मुआवजा दिलाया था, और जिनको सुरक्षित रूप मे भारत जाने का प्रबन्ध किया था, उन्होने ही महात्मा गाधी और सरदार वल्लभभाई पटेल के हृदय मे मेरे विरुद्ध विकार पैदा किया था। उन्होने मुझे इस रूप मे दिखलाया जैसे कि मैं भारत के विरुद्ध पाकिस्तान का पक्षपाती हो गया। जब १९५० मे मैं केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे आया तो सरदार साहब ने सम्भवत यह देखा कि मैं अपना स्वतन्त्र मत रखता हूँ और न इस तरफ न उस तरफ का अन्ध पक्षपाती हूँ। दुःख की बात है कि उन दिनो मे यह समझा जाता था कि दिल्ली के सभी अधिकारी प्रधान मन्त्री और उप-प्रधान मन्त्री के पक्ष मे बँट गये है। निराधार दलबन्दी के नाम से लोग नेताओ को बदनाम कर रहे थे। सरदार साहब ने मेरे पास एक विशिष्ट सज्जन को भेज कर इस बात पर दुःख प्रकट किया कि पाकिस्तान के मेरे कार्य के सम्बन्ध मे उन्होने अनुचित धारणा की थी। उन्होने तो कृपा कर यहाँ तक कहा कि उन्होने मुझे बहुत उच्च श्रेणी का सज्जन पाया। यह सुनकर मुझे बडा असमजस हुआ क्योकि वास्तव मे मैं इतनी प्रशसा का अपने को योग्य नही समझता। जैसे कराची मे वैसे ही दिल्ली मे मैं अपने कर्तव्यमात्र का पालन करता था। मुझे दुःख है कि महात्मा गाधी के भ्रम को दूर करने का मुझे अवसर नही मिला। मैंने सरदार साहब को तो कभी लिखा भी नही पर

महात्मा गाधी को लिखा था कि 'मुझे मोका दिया जाय कि मै अपनी वात सुना सकूँ'। मुझे कोई उत्तर नही मिला। सम्भवत उनके सचिवो ने मेरा पत्र ही उनके सामने नही रखा, क्योकि जहाँ तक मुझे स्मरण है इसके पहले अपने सब पत्रो का उत्तर उनसे मुझे मिला था।

एक घटना से मुझे वहुत ही सन्तोप हुआ। जव मै सयुक्त वम्बई प्रदेश के राज्यपाल की हैसियत मे भ्रमण कर रहा था तो मै एक नगरी विशेप मे पहुँचा, जहाँ सिन्धियो ने अपने लिए सामूहिक रूप से मकान वनवाये थे और वही वस गये थे। सायकाल के समय एक वृद्ध सिन्धी सज्जन मुझसे मिलने आये। उन्होने सुना था कि राज्यपाल आये हुए है। मैने उनसे पूछा कि आप किस नगरी से आये, कव आये, और अव कैसे हे। अपना पुराना हाल वतलाकर उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि 'मै आराम से और समुचित रूप से वस गया हूँ और मैं अपनी स्थिति से सन्तुष्ट हूँ'। तव उन्होने कहा कि 'सन् १९४८ मे जव मै सिन्ध से आया तो वहाँ श्रीप्रकाश नाम के उच्च-आयुक्त थे। स्थिति विषम थी, दिन कठिन थे, पर उन्होने मेरी और मेरे साथियो की वडी सहायता की थी'। इन आगन्तुक सज्जन ने मुझे पहचाना नही। और न वे अनुमान ही कर सकते थे कि उस समय के पाकिस्तान का उच्च-आयुक्त ही आज का वम्वई का राज्यपाल हे। साधारण मनुष्य होने के नाते अवश्य ही मुझे यह सुनकर वडा सन्तोप हुआ। यद्यपि कुछ उच्च-पदस्थ सिन्धी लोगो ने मेरे विरुद्ध गाधीजी और सरदार साहव का कान भरा था, तथापि ऐसे दूसरे लोग थे जो समझते थे कि मैने अपने कर्तव्यो का यथाशक्ति पालन किया। स्थिति की कठिनाई वे जानते थे और मेरे सम्बन्ध मे यह विचार रखते थे कि जो कुछ इससे हो सकता है यह कर रहा है। इस घटना को उद्धृत करने के लिए मै क्षमाप्रार्थी हूँ। सरदार साहव के कृपापूर्ण शब्दो से मेरे हृदय का वहुत आप्यायन हुआ क्योकि मै जानता था कि पाकिस्तान के मेरे कार्य के सम्बन्ध मे उनके विचार पहले मेरे विरुद्ध थे। साथ ही इन वयोवृद्ध सिन्धी सज्जन का प्रमाणपत्र मेरे लिए विशेप

आनन्द का साधन हुआ। इनकी स्मृतियाँ मेरे हृदय मे बराबर बनी रहेगी। मेरे पहले सरकारी पद के कार्य के सम्बन्ध मे ये वास्तव मे बडे मूल्यवान उपहार है। मेरे लिए यह कह देना भी अनुचित न होगा कि मद्रास और बम्बई के राज्यपाल होने के नाते मुझे सिन्धियो के बहुत से उत्सवो मे आमन्त्रित किया जाता था, उनके कितने ही सामूहिक वास-स्थानो मे मैं गया हूँ। उनकी शिक्षा और सास्कृतिक सस्थाओ का शिलान्यास मैंने किया है। मेरे निमत्रको मे कराची के बहुत से मित्र रहे है जो मेरे पाकिस्तान के कार्य के सम्बन्ध मे मुझसे पहले अप्रसन्न थे। मेरे बारे मे उनके मन मे विकार था यद्यपि उनमे से कितनो को मैने भारत चले आने मे सहायता पहुँचायी थी। जब ये भी मेरे पुराने कार्य की सराहना करने लगे तो अवश्य ही मुझे बडी प्रसन्नता हुई। कराची मे एक महिला विशेष मुझसे बहुत रुष्ट थी, पर पीछे बम्बई मे मुझसे पर्याप्त सौहार्द रखती थी। सार्वजनिक पुरुषो को विषम स्थितियो मे बहुत से कठिन कार्य करने पडते है। उनके लिए ऐसी घटनाएँ बडी प्रिय उपहारवत् होती है। कम से कम मेरे मन मे इनके लिए बडा मूल्य है।

अन्तिम दिनों की स्मृतियाँ

पाकिस्तान के मेरे कार्यकाल की समाप्ति के आखिरी कुछ महीने अपेक्षया शान्तिमय थे। मामला सब बैठ रहा था, और यह आशा की जा रही थी कि पाकिस्तान और भारत के झगडे के निराकरण का कोई उचित उपाय राष्ट्र संघ का आयोग निकाल सकेगा, जिससे दोनो राज्यो मे शाति की स्थापना हो सके। जनवरी सन् १९४९ के अन्तिम दिनो मे एक दिन प्रात काल मैं टेबुल पर बैठा कार्य कर रहा था जब टेलीफोन की घन्टी बजी और टेलीफोन कार्यालय से मुझे सूचना दी गयी कि दिल्ली से टेलीफोन आया है। दिल्ली मे प्रतिदिन कितने ही टेलीफोन आया करते थे। मैंने थकी आवाज मे उत्तर दिया कि 'टेलीफोन मिला दिया जाय'। प्रधान मन्त्री की परिचित आवाज सुन पडी। उन्होने कहा—'मैं चाहता हूँ कि तुम आसाम चले जाओ'। मैंने पूछा—'आप मुझे वहाँ क्यो भेजना चाहते हैं'? उन्होने कहा—'मैं चाहता हूँ कि तुम आसाम के राज्य-पाल हो'। ब्रिटिश काल के अन्तिम दिनो मे सर अकबर हैदरी इस पद पर भेजे गये थे। उनकी एकाएक मृत्यु हो गयी। मैंने प्रधान मन्त्री से कहा कि 'अच्छा हो यदि मैं यहाँ से न हटाया जाऊँ क्योकि पाकिस्तान मे अभी बहुत कुछ काम करना बाकी है'। उन्होने कहा कि 'यह सब काम तो हो ही जायगा, तुम आसाम चले जाओ'। उन्होने यह भी कहा कि 'आसाम बडा सुन्दर प्रदेश है। तुम उसे पसन्द करोगे'। मैं नही चाहता था कि अपने कार्य को इस प्रकार छोड जाऊँ। उसमे विघ्न करना मैंने पसन्द नही किया। थोडा झुँझलाकर मैंने कहा कि 'अपनी इस वय मे मै सौन्दर्य की खोज मे नही हूँ'। पर उन्होने हठ किया, और मुझे विवश होकर उनकी बात स्वीकार ही करनी पडी।

मुझसे कहा गया कि 'अभी यह बात अपने तक रखना'। परन्तु

मालूम पड़ता है कि टेलीफोन सुन लिया गया। इसमे तो कोई सदेह नही कि हमारा टेलीफोन बीच से सुन लिया (टेप किया) जाता था। उसी दिन सायकाल जहाँ कही मैं जाता था लोग पूछते थे—'क्या आप आसाम जा रहे हैं' ? मुझे इस बात को अभी गोपनीय रखने को कहा गया था, इस कारण यह समझना कठिन हो गया कि इसका क्या उत्तर दिया जाय। मुझे विशेष प्रकार से असमजस हुआ जब अफगानिस्तान के राजदूत मेरे मित्र मार्शल शाह वली खाँ ने इस पर दु ख प्रकट किया कि मैं जा रहा हूँ। मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि 'कोई बात निश्चय नही हुई है और मैं स्वय ठीक तरह नही जानता कि इस सम्बन्ध मे क्या निर्णय किया जायगा'। जनवरी १९४९ के अन्तिम दिनो की यह बात है। तीस जनवरी को हम सब गम्भीरता से महात्मा गाधी को पुण्य तिथि मनाते है। कुछ दिन पहले कराची के व्यापारियो ने महात्मा गाधी की मूर्ति नगर के विशेष स्थल पर स्थापित की थी। मै चाहता था कि इस मूर्ति पर मैं उस दिन कुछ फूल चढाऊँ। ऐसा करने के लिए मैंने पाकिस्तान शासन से अनुमति माँगी। मुझे दु ख है कि मैंने ऐसा किया क्योकि बिना किसी की अनुमति माँगे यदि मैं वहाँ चला जाता और मूर्ति की आराधना करता तो सम्भवत कोई पूछताछ न होती। पर मैंने उचित समझा कि पाकिस्तान शासन को अपनी इच्छाओ से अवगत करा दूँ, जिससे पीछे कोई जटिलता पैदा न हो। ऐसा करना मैंने इस कारण और भी आवश्यक समझा कि कुछ दिनो से इस बात की माँग पेश की जा रही थी कि सडको पर से सब मूर्तियाँ हटा दी जायें। इसलाम धर्म ने आदेश दिया है कि जिन वस्तुओ को ईश्वर ने बनाया है, उनको प्रतिमा मनुष्य न बनावे। राज्य की तरफ से मुझे उत्तर दिया गया कि किसी मूर्ति की सार्वजनिक रूप से पूजा करने की अनुमति नही दी जा सकती, क्योकि ऐसा करना हमारे धर्म के विरुद्ध है। ऐसी अवस्था मे मैंने इतने से ही सन्तोष किया कि मूर्ति के सामने से मैं गुजरूँ और कुछ दूर से ही उसकी आराधना करूँ। अब तो मूर्ति वहाँ नही रह गयी है। मैं नही कह सकता कि अन्य सब मूर्तियो की क्या दशा हुई। मेरे समय कराची मे बहुत सी

मूर्तियाँ थी। इस सम्बन्ध मे ससद् मे वहुत से प्रश्न पूछे गये और इस वात पर रोष प्रकट किया गया कि राष्ट्रपिता के प्रति उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर भारतीय उच्च-आयुक्त को श्रद्धाजलि अर्पित नही करने दी गयी।

आसाम जाने की तैयारी मे मै लगा और फरवरी के आरम्भ मे वहाँ से चला। एक छोटी सी सुन्दर घटना का उद्धरण कर देना उचित होगा। समाचार-पत्रो मे यह प्रकाशित हो गया कि मै राज्यपाल होकर आसाम जा रहा हूँ। मुझे लखनऊ से उत्तर प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने टेलीफोन किया और हँसी मे मुझसे कहा कि 'यह तुम्हारे लिए उचित नही है कि इस प्रकार से एकाएक तुम अपना कर्तव्यपद छोडकर चले जाओ'। राज्यपाल वनाये जाने पर उन्होने मुझे वधाई दी और तव किन्ही मुसलिम सज्जन का नाम वतलाया जिनकी लखनऊ मे मृत्यु हो गयी थी। उन्होने यह कहा कि उनके कोई वहुत निकट सम्वन्धी पाकिस्तान राज्य की नौकरी मे है जिनकी प्रतीक्षा मे उनका शव रखा हुआ है। इन सज्जन का मुझे नाम भी वतलाया और मुझसे कहा कि इनका तुम पता लगाओ और शीघ्र इन्हे वायुयान मे लखनऊ भिजवा दो। रविवार या किसी अन्य छुट्टी का वह दिन था। ये सज्जन न घर पर मिले न दफ्तर मे। वे छुट्टी मनाने कही चले गये थे। तीसरे पहर तक मुझे उनका पता लगा। मैने उन्हे अपने कार्यालय मे वुलाया। लखनऊ का सन्देश सुनाया। अनुमति-पत्र दिया और उनसे कहा कि आप फौरन लखनऊ चले जाइये। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है वे गये। जब तक वे नही पहुँचे उनके कुटुम्बीजन का शव रखा हुआ था।

यह घटना इस वात को प्रमाणित करती है कि भारत के शासनाधिकारियो के हृदयो मे मुसलमानो के भावो के प्रति कितना आदर था। इसमे हमे इसका भी पता लगता है कि सहज स्त्री स्वभाव के अनुरूप श्रीमती सरोजनी नायडू के हृदय मे दूसरो के लिए कितनी सहानुभूति थी। वास्तव मे वे विलक्षण स्त्री थी। जो कोई भी उन्हे जानता था, वह कभी उन्हे नही भूल सकता।

हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए वे सतत प्रयत्नशील थी, और दु ख की बात है कि इस सम्बन्ध मे उनके भी प्रयत्न सफल नही हुए। उस कठिन समय राज्यपाल के रूप मे उनका लखनऊ मे रहना बहुत ही लाभदायक हुआ। पाकिस्तान की मॉग के कारण साम्प्रदायिक सौहार्द मे जो ठेस लगी थी उसके दुष्परिणाम का वे बहुत कुछ निराकरण कर सकी। इस घटना से यह भी सिद्ध होता है कि देश के विभाजन से कैसी निर्दयता से निकट से निकट कुटुम्बी जन एक दूसरे से पृथक् कर दिये गये। उत्तर प्रदेश मे हिन्दू और मुसलिम सस्कृतियो का बडा सुन्दर समन्वय हो रहा था और दोनो मे परस्पर का सौहार्द बना रहा।

पाकिस्तान से चलने के पहले मैं मन्त्रियो, राजदूतो और अन्य मित्रो से विदा होने उनके घरो पर गया। सब ने ही मेरा प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया। मेरी काशी नगरी के बने हुए कुछ रेशमी जरी के दुपट्टे मेरे पास थे। अपनी मैत्री और सद्भाव के रूप मे मैंने अपने सहयोगी राजदूतो की पत्नियो को ये दिये। उन्होने कृपा कर इन्हे स्वीकार किया और मेरे लिए साधु भाव प्रकट किये। चलते-चलते मैं मिस फातिमा जिन्ना से भी मिलने गया। उन्होने अपने नये निवास-स्थान मे मेरा स्वागत किया। भाई की मृत्यु के शोक मे यूरोपीय उपचार के अनुसार वे काला वस्त्र पहिने हुए थी। वे एकाकी जीवन व्यतीत कर रही थी। जिन लोगो को उनके भाई ने बनाया था, वे भी जैसे उन्हे भूल गये थे। उन्होने मेरा सादर स्वागत किया और कहा—'मैं नही जानती कि क्यो कायदे आजम साहब ऐसा विचार करते थे कि हिन्दू और मुसलमान एक साथ नही रह सकते, पर उनका ऐसा ही विचार था। आप अवश्य अपना प्रभाव इस ओर लगाइयेगा कि भारत और पाकिस्तान मे सद्भावना बनी रहे'। वास्तव मे मुझसे इसे कहने की आवश्यकता नही थी। मै तो सद्भाव बनाये रहना चाहता ही हूँ, पर मेरा कोई प्रभाव नही है। प्रबल इच्छा रहते हुए भी मै कर ही क्या सकता हूँ। उनके एकाकी जीवन को देखकर मुझे दु ख हुआ। चलते हुए मेरे मन मे यह भी विचार आये कि विभाजन के कारण हमारे देश और देशवासियो

को, चाहे वे पाकिस्तान मे हो या भारत मे, कितना व्यर्थ का कष्ट सहना पड रहा है।

पाकिस्तान शासन ने मुझे वडे समारोह के साथ विदाई देना निश्चय किया। दिल्ली से मेरे लिए विशेष वायुयान भेजा गया था। उस पर चढने के पहले मुझे वहुत वडा भोज दिया गया। जव मुझे पहले-पहल मालूम हुग्रा कि कुछ ऐसा प्रस्ताव किया जा रहा है तो मैने कहा कि इससे तो नजीर स्थापित हो जायगी ग्रौर शासन को इसी प्रकार का भोज उन वीसो राजदूतो को देना पडेगा जो यहाँ ग्रपने देशो की तरफ से नियुक्त है। ग्रच्छा हो यदि मेरे लिए कोई विशेप प्रवन्ध न किया जाय। कुछ ऐसा सयोग था कि राजदूतो मे वहाँ मै ही सवसे पहले ग्राया था ग्रौर वहाँ से सवसे पहले चला भी। मुझे पीछे मालूम हुग्रा कि शासन के ग्रविकारियो ने यही निश्चय किया कि मुझे भोज दिया जाय ग्रौर समुचित रूप से मेरी विदाई की जाय। मुझे यह भी वतलाया गया कि मेरा सन्देश पहुँचने के वाद शासन ने यह निश्चय किया कि इस प्रकार का ग्रायोजन नजीर न समझा जायगा। गवर्नर जनरल ख्वाजा नाजिमुद्दीन, मन्त्रीगण ग्रौर ऐसी मुसलिम स्त्रियाँ जो पर्दा नही करती थी, साथ ही सपत्नीक राजदूतगण सभी इस भोज मे ग्राये। परराष्ट्र मन्त्री सर मोहम्मद जफरुल्ला खाँ ने कुर्सी पर खडे होकर भाषण किया। वडे प्रेम से उन्होने मुझे विदा किया ग्रौर कहा कि श्रीप्रकाश की वातो को काटना वडा कठिन होता था क्योकि इनकी ग्रादत है कि सव मामलो को मानवता के स्तर पर रख देते हे, जहाँ दलील काम नही कर सकती। ग्रपने उत्तर मे मैने इस विशेप सम्मान के लिए सवको हार्दिक धन्यवाद दिया ग्रौर ग्राशा प्रकट की कि जो देश पहले एक था उसके दोनो ग्रगो मे परस्पर की सद्भावना वनी रहेगी। मैने ग्रग्रेजी की एक कविता भी उद्धृत की जिसमे कवि ने कहा है कि ससार मे वहुत सी जातियाँ है, वहुत से सम्प्रदाय हे, ग्रौर चारो तरफ नाना प्रकार के मार्ग खुले हुए हे। पर हमारे दु खी जगत् को सिर्फ इस कला की ग्रावश्यकता है कि लोग एक दूसरे के प्रति दया ग्रौर प्रेम का भाव वनाये रहे।

भोज के वाद मैंने सवसे ही मैत्रीपूर्ण हाथ मिलाया। सबने ही शुभकामनाएँ प्रकट की। हवाई अड्डे पर वहुत से स्त्री-पुरुप आये। इतनी वडी भीड देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। तीसरे पहर का समय था, धूप वडी तेज थी। हवाई अड्डा नगर से १४ मील दूर भी था। वास्तव मे अपने कराची के कार्य को छोडते हुए मुझे दु ख हुआ। मैंने वहाँ पर कठिन डेढ वर्ष विताया था। मै पहले से ही वहाँ के नेताओ और उच्च अधिकारियो को जानता था। इस कारण मेरा कार्य एक प्रकार से सरल हो गया था। मुझे हर्ष है कि वहां के लोग मुझे मित्र और शुभचिन्तक मानते थे। इस कारण मै वहुत सी कठिनाइयो को दूर कर सका और तात्कालिक सकटो को हटाता रहा। उस समय पाकिस्तान स्थित भारत के उच्च-आयुक्त का पद कष्टमय था। मै अपने प्रधान मन्त्री के प्रति अनुगृहीत हूँ कि उसके योग्य उन्होने मुझे समझा। मेरे मन मे तो सदा यह दु ख वना रहेगा कि देश का विभाजन हुआ। फिर पृथक् होने के वाद भाइयो मे जो परस्पर का सद्‌भाव वना रहना चाहिए था उसके वदले कटुता और विकार ही पैदा हुआ जो आज भी वना हुआ ही नही है, पर वटता जा रहा है। मै चाहता हूँ कि मै कुछ ऐसी अवस्था मे रहता जहाँ सद्‌भाव की स्थापना मे सहायक हो सकता। अपनी वर्तमान स्थिति में कुछ न कहना ही उचित होगा। इस अध्याय को समाप्त करते हुए मुझे यह सन्तोप है कि जितनी मेरी शक्ति और वुद्धि थी उसके अनुरूप मैंने प्रयास किया। यदि मै सफल नही हुआ तो किसको दोप दूं। भविष्य की घटनाओ और भावी परिणामो को ईश्वर को ही समर्पित कर देना उचित होगा।

सन्दर्भ-सूची